संकल्प शक्ति की प्रचंड प्रतिक्रिया

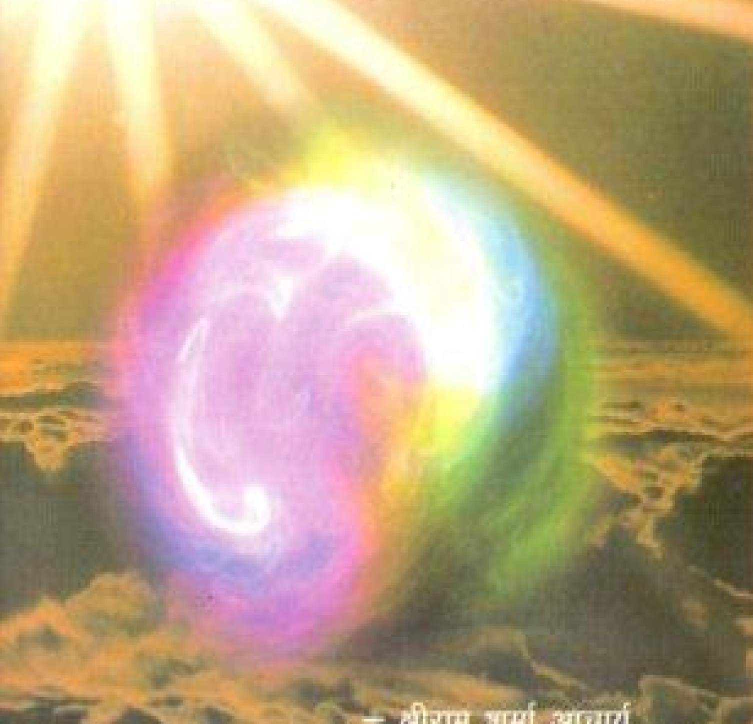

संकल्प शक्ति की प्रचंड प्रतिक्रिया

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

२०१० मूल्य : १२.०० रुपये

संसार की सारी सफलताओं का मूल मंत्र है-प्रबल इच्छा-शक्ति। इसी के बल पर विद्या, संपत्ति और साधनों का उपार्जन होता है। यही वह आधार है जिस पर आध्यात्मिक तपस्याएँ और साधनाएँ निर्भर रहती हैं। यही वह दिव्य संबल है जिसे पाकर संसार में खाली हाथ आया मनुष्य वैभव संपन्न, ऐश्वर्यवान बन कर संसार को चकित कर देता है। जीवन में उन्नति और सफलता की आकांक्षा करने से पहले अपनी इच्छा-शक्ति को प्रबल तथा प्रखर बना लेने वालों को न कभी असफल होना पड़ता है और न निराश।

ISBN
81-89309-11-0

उन्नति की आकांक्षा मात्र नहीं, संकल्प जरूरी

संकल्प क्रियाशक्ति में तन्मयता की प्रतिष्ठा का नाम है। 'यह मेरा संकल्प है' इसका अर्थ है कि अब मैं इस कार्य में प्राण, मन और समग्र शक्ति के साथ संलग्न हो रहा हूँ। इस प्रकार की विचारणा, दृढ़ता ही सफलता की जननी है। संकल्प तप का, क्रियाशक्ति का विधायक है, इसी से उसमें अनेक सिद्धियाँ और वरदान समाहित है।

जिन विचारों से मनोभूमि में स्थाई प्रभाव पड़ता है और जिनसे अंत:करण में अमिट छाप पड़ती है, वे पुनरावृत्ति के कारण स्वभाव के एक अंग बन जाते हैं। ऐसे विचारों का अपना एक विशेष महत्त्व होता है। इन विचारों को क्रमबद्ध रीति से सजाने की क्रिया जिन्हें ज्ञात होती है वे अपना भाग्य, दृष्टिकोण और वातावरण परिवर्तित कर सकते हैं और इस परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन में कोई विशेष दृश्य या स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं।

आवश्यकता को आविष्कार की जननी कहा जाता है। जब किसी बात की तीव्र इच्छा होती है तो उसे पूर्ण करने के लिए साधनों की तलाश आरंभ होती है, अत: कोई न कोई उपाय भी निकल ही आता है। वह इच्छा यदि प्रेरक है, उसे पूरा करने की भूख यदि भीतर से उठी है और उसके पीछे पर्याप्त प्राण और जीवन लगा हुआ है कि 'मैं इस वस्तु को प्राप्त करके रहूँगा, चाहे कितनी ही बाधाएँ क्यों न आएँ, प्रयत्न निरंतर जारी रखूँगा, चाहे कितने ही निराश करने वाले अवसर क्यों न आएँ।' इस प्रकार के संकल्प की यदि मन में गहरी और सुदृढ़ स्थापना हो जाए तो लक्ष्य

तक पहुँचना बहुत सरल हो जाता है। दूसरे के लिए कठिन जान पड़ने वाला कार्य भी इस संकल्पवान के लिए सामान्य क्रिया से अधिक नहीं रह जाता।

बराबर आगे बढ़ते रहने के लिए बराबर नई शक्ति प्राप्त करते रहना भी आवश्यक है। उन्नति का क्रम टूटना नहीं चाहिए, आगे बढ़ने से रुकना या हिचकिचाना नहीं चाहिए, पर यह तभी संभव है जब हमारा संकल्प, हमारा उद्देश्य अटूट साहस, श्रद्धा एवं शक्ति से ओत-प्रोत हो। आधे मन से, उदासीन होकर काम करने वाला फूहड़ कहा जाता है। उसे कोई विशेष सफलता मिल ही नहीं पाती।

'अगर मुझे अमुक सुविधाएँ मिलती तो मैं ऐसा करता' इस प्रकार की कोरी कल्पनाएँ गढ़ने वाले आत्मप्रवंचना किया करते हैं। भाग्य दूसरों के सहारे विकसित नहीं होता। आपका भार ढोने के लिए इस संसार में कोई दूसरा तैयार न होगा। हम यह यात्रा अपने पैरों से ही पूरी कर सकते हैं। दूसरे का अवलंबन लेंगे तो हमारा जीवन कठिन हो जाएगा। हमारे भीतर जो एक महान चेतना कार्य कर रही है, उसकी शक्ति अनंत है, उसी का आश्रय ग्रहण करें तो प्रत्यक्ष आत्मविश्वास जाग जाएगा। तब तुम दूसरों के भरोसे भी नहीं रहोगे। संकल्प का दूसरा रूप है-आत्मविश्वास। वह जाग्रत हो जाए तो अपना विकास तेजी से, अपने आप पूरा कर सकेंगे। आज हम जैसे कुछ हैं, अपने जीवन को जिस स्थिति में रखे हुए हैं, अपने निजी विचारों के परिणाम हैं। जैसे विचार होंगे, भविष्य का निर्माण भी उसी तरह ही होगा।

संकल्प का संबंध सत्य और धर्म से होता है। उसका प्रयोग अधर्म और अत्याचार के लिए नहीं हो सकता। अधर्म पतन की ओर ले जाता है, पर यह संकल्प का स्वभाव नहीं है। अधर्म से धर्म की ओर, अन्याय से न्याय की ओर, असत्य से सत्य की ओर, कायरता से साहस की ओर, कामुकता से संयम की ओर, मृत्यु से

जीवन की ओर अग्रसर होने में संकल्प की सार्थकता है। आचार्यों ने उसे इसी रूप में लिया है। भारतीय धर्म में अनुशासन की इस उदात्त परंपरा का ध्यान रखते हुए ही गुरुजन "सत्यं वद, धर्मम् चर" का संकल्प अपने शिष्यों से कराते रहे हैं। आध्यात्मिक तत्त्वों की अभिवृद्धि की तरह ही भौतिक उन्नति की नैतिक आकांक्षा को बढ़ाना भी संकल्प के अंतर्गत ही आता है। जहाँ अपने स्वार्थों के लिए अधर्माचरण शुरू कर दिया जाता है, वहाँ संकल्प का लोप हो जाता है और वह कृत्य अमानुषिक, आसुरी, हीन और निकृष्ट बन जाता है। संकल्प के साथ जीवन-शुद्धता की अनिवार्यता भी जुड़ी हुई है। संकल्प की इस परंपरा में अपनी उज्ज्वल गाथाओं को ही जोड़ा जा सकता है। निकृष्टता से, पाप से, स्वार्थ की सतर्कता और अत्याचार द्वारा संकल्पजयी नहीं बना जा सकता।

अनमनस्कता, उदासीनता और मुर्दादिली को छोड़कर ऊँचे उठने की कल्पना मनःक्षेत्र को सतेज करती है। इससे साहस, शौर्य, कर्मठता, उत्पादन शक्ति, निपुणता आदि गुणों का आविर्भाव होता है। इन गुणों में शक्तियों का वह स्रोत छुपा हुआ है जिससे संतोष, सुख और आनंद का प्रतिक्षण रसास्वादन किया जा सकता है। निकृष्टता मनुष्यों में दुर्गुण पैदा करती है जिससे चारों ओर से कष्ट और क्लेश के परिणाम ही दिखाई दे सकते हैं। संकल्प को इसीलिए जीवन की उत्कृष्टता का मंत्र समझना चाहिए, उसका प्रयोग मनुष्य जीवन के गुण विकास के लिए होना चाहिए।

अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय मत समझिए। 'साधनों के अभाव में किस प्रकार आगे बढ़ सकेंगे' ऐसे कमजोर विचारों का परित्याग कर दीजिए। स्मरण रखिए शक्ति का स्रोत साधनों में नहीं संकल्प में है। यदि उन्नति करने की, आगे बढ़ने की इच्छाएँ तीव्र हो रही होंगी तो आप को जिन साधनों का आज अभाव दिखलाई पड़ता है, वे निश्चय ही दूर हुए दिखाई देंगे। संकल्प में सूर्य रश्मियों का तेज है, वह जाग्रत चेतना का शृंगार है, विजय का

हेतु और सफलता का जनक है। दृढ़ संकल्प से स्वल्प साधनों में भी मनुष्य अधिकतम विकास कर सकता है और मस्ती का जीवन बिता सकता है।

उन्नति की आकांक्षा रखना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, उसे आगे बढ़ना भी चाहिए, पर यह तभी संभव है जब मनुष्य का संकल्प बल जाग्रत हो। जो लोग अपने को दीन, असफल और पराभूत समझते हों, संकल्प उनके लिए अमोघ अस्त्र है। संकल्प के द्वारा प्रत्येक मनुष्य जय, जीवन और सफलता प्राप्त कर सकता है।

जिल्दसाज से महान वैज्ञानिक

माइकल फैराडे निर्धन के पुत्र होने के कारण प्रारंभ में एक जिल्दसाज के यहाँ बहुत थोड़े वेतन पर नौकर थे। दुकान पर जिल्द बाँधने के लिए जो पुस्तकें आतीं, उनमें से वे विज्ञान की पुस्तकें चुपचाप पढ़ा करते थे। ये उन्हें अच्छी लगती थीं।

पढ़ते-पढ़ते विज्ञान जैसे विषय में उसकी रुचि जाग्रत हो उठी। कुछ-कुछ समझ में आने लगा। शौक उत्तरोत्तर बढ़ता गया। तनिक भी समय फालतू मिलता कि फैराडे किताबों में डूब जाता। जब तक किताब पूरी न पढ़ लेता, उसे न छोड़ता।

अब उसे ज्ञान के प्रति सच्ची लगन लग गई थी। विज्ञान को समझने की उत्कट इच्छा पैदा हो गई, पर सुविधाएँ और साधनों की बड़ी कमी थी, बड़ा गरीब था।

एक दिन रायल कैमिकल सोसायटी में घोषणा हुई कि सर हैम्फी डैबी का विज्ञान संबंधी भाषण होने वाला है। इस विज्ञप्ति को सुनकर बालक फैराड़े के मन में उसे सुनने की बड़ी इच्छा हुई। इस वैज्ञानिक की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। मालिक जिल्दसाज से आज्ञा लेकर वह उस भाषण को सुनने गया। साथ में नोट करने के लिए कागज और पैन्सिल भी लेता गया।

उसे हैम्फी डैवी का भाषण इतना महत्त्वपूर्ण और रोचक लगा कि उसने उसे जल्दी-जल्दी समूचा ही लिख डाला। फिर सुवाच्य अक्षरों में लिखकर उसे हैम्फी के पास दिखाने गया। उन्होंने उसे पढ़ा तो चकित रह गए। इतनी जल्दी उस महत्त्वपूर्ण भाषण को लिख डालने वाला अवश्य ही उस विषय का अच्छा ज्ञाता होना चाहिए।

हैम्फी डैवी ने आश्चर्य से पूछा—"माइकिल फैराडे हम तुम्हारी लगन और विज्ञान के प्रति असीम उत्साह से बड़े प्रसन्न हैं। तुम आखिर हमसे क्या चाहते हो ?"

माइकल फैराडे उनके साथ रहना और विज्ञान का गहरा अध्ययन करना चाहता था। वह किसी अध्यापक की शागिर्दी करना चाहता था। इस अवसर से लाभ उठाने की दृष्टि से उसने तुरंत कहा—

"मुझे आप अपनी प्रयोगशाला में कोई छोटा काम दे दीजिए। मैं जिंदगी गुजारना चाहता हूँ।"

हैम्फी डैवी ने उसकी सेवाएँ स्वीकार कर लीं। अब वह उनकी प्रयोगशाला में तन्मयता से कार्य करता, नई-नई विज्ञान की पुस्तकें पढ़ता, तरह-तरह से अपना ज्ञान बढ़ाता और हैम्फी डैवी के भाषणों को सुनता रहता। जीवन में अध्ययन की जो सुविधा पहले कभी न मिलती थी, वह उसे अब मिल रही थी। अध्ययन और योग्यताएँ बढ़ाने का कार्य ऐसा है कि कभी भी किया जा सकता है। कुछ बड़ी उम्र में ही, माइकल फैराडे ने तन्मयता और बड़ी लगन से पढ़ना शुरू कर दिया। उत्कट इच्छा शक्ति के कारण उसकी योग्यताएँ निरंतर बढ़ती ही गईं। बुद्धि प्रखर होने लगी।

एक दिन उसकी जिंदगी ने नई करवट ली।

रात्रि का समय था। अपनी प्रयोगशाला में हैम्फी डैवी महत्त्वपूर्ण घोल (सौल्यूशन) तैयार कर रहे थे। दैवयोग से उन्हें किसी आवश्यक कार्य से प्रयोगशाला से बाहर आना पड़ा। उन्होंने

फैराडे को बुलाया और बोले-"मुझे एक जरूरी काम से बाहर जाना है। इस सौल्यूशन को हिलाना बेहद जरूरी है। इसमें मेरा एक नया प्रयोग चल रहा है। यदि तनिक भी रुक गया, तो सारा श्रम नष्ट हो जाएगा। तुम इसे इसी प्रकार हिलाते रहना, मैं जल्दी लौटता हूँ। लो सँभालो काम।"

माइकल फैराडे ने वह कार्य प्रारंभ कर दिया, लेकिन न जाने क्या हुआ कि एक घंटे के बाद भी डैवी वापिस न लौटे। वह प्रतीक्षा करता रहा।

उसका कार्य फिर भी जारी रहा। अब दो घंटे बीत चुके थे। माइकल फैराडे के हाथ घोल हिलाते रहे थे, नेत्रों में नींद आ रही थी। वह नींद को भगा रहा था और समय बीतता जा रहा था।

यहाँ तक कि सारी रात ही बाट देखते-देखते बीत गई। प्रातः कालीन रंगीन रश्मियाँ क्षितिज पर हँसने लगीं।

सुबह जब हैम्फी डैवी आए तो उन्होंने देखा माइकल फैराडे अब भी तन्मयता और लगन से उनका घोल पूर्ववत् हिला रहा था। वहाँ तनिक शिकायत न थी।

वह लड़के की परिश्रमशीलता और तन्मयता पर दंग रह गए। विज्ञान के प्रति इतनी लगन ? इतनी असीम एकाग्रता ? अपने शरीर तक की कोई परवाह नहीं। नींद की एक झपकी तक नहीं। जरूर इस लड़के में बड़ा आदमी बनने के गुण हैं। वही श्रम, वही उद्योग, आज्ञाकारिता, लगन और उत्साह। क्यों न लड़के को ऊँचा उठने का मौका दिया जाए ? उनका वात्सल्य जैसे जाग उठा।

वे फैराडे से बोले—"तुम्हें विज्ञान के प्रति सच्चा और गहरा लगाव है। पूर्ण निष्ठा है। यह लगन और उत्साह तुम्हारी आदत का एक अंग है। ऐसा कोई कार्य नहीं जो उत्कृष्ट इच्छा और उद्योग से पूर्ण न हो सकता हो। उत्साहपूर्वक मेहनत से तुम विज्ञान में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हो। दृढ़ संकल्प से तुम जरूर ऊँचे

उठोगे। मुझ से थोड़ा-थोड़ा विज्ञान पढ़ा करो। मैं तुम्हें उच्चकोटि का वैज्ञानिक देखना चाहता हूँ।''

फैराडे को जैसे मन की मुराद ही मिल गई। अंधा क्या माँगे ? दो नयन। उसने नियमित रूप से बड़ी लगन और उत्साह से व्यवस्थित रूप में विज्ञान का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। उसने अपनी सारी ताकतें उसी में लगाईं और आश्चर्यजनक योग्यता उपार्जित की। अंत में उसके परिश्रम से बड़े बहुमूल्य परिणाम निकले।

फैराडे ने विद्युत परिचालित डाइनुमा, चुम्बक से बिजली पैदा होने के सिद्धांत तथा इलैक्ट्रोनिक्स के नियम मालूम किए। रसायन शास्त्र तथा भौतिक शास्त्र दोनों में ही फैराडे का स्थान अति आदर के साथ लिया जाता है।

एक जिल्दसाज से उच्चतम वैज्ञानिक ? उत्साहपूर्वक कार्य कभी भी प्रारंभ किया जा सकता है। वह सदैव ऊँचे फल लाता है।

गुप्त मन की विराट शक्ति

एक व्यक्ति था, जो अपनी पत्नी द्वारा 'महामूर्ख' कहा गया, बुरी तरह तिरस्कृत और लांच्छित हुआ। बात उसके गुप्त मन में लग गई। उसे बड़ा बुरा लगा। उसने पत्नी को छोड़ा और बड़ी आयु में विद्या-अध्ययन में लग गया। दीर्घकाल के अभ्यास और अटल संकल्प के बल से वह संस्कृत का महाकवि कलिदास बना। समग्र भारत उसकी प्रतिभा और विद्या से चमत्कृत हो उठा। उसके गुप्त मन में काव्यशक्ति का वृहद् भंडार छिपा हुआ था।

एक डाकू था, जिसकी जीविका का उपार्जन मुसाफिरों को लूटने और हत्याएँ करने से चलता था। एक दिन एक मुनि उसकी पकड़ में आ गए। उसने उन्हें भी मारना चाहा, पर उन्होंने विनीत भाव से उससे कहा—'जिन व्यक्तियों के पालने के लिए तुम इतने व्यक्तियों की हत्या का पाप अपने ऊपर ले रहे हो, क्या वे तुम्हारे

इस पाप में हिस्सेदार बनेंगे ? जाओ और अपने परिवार वालों से पूछो।' डाकू चला गया। उसने यह बात पूछी, लेकिन उनका उत्तर सुनते ही उसका चेहरा उतर गया। उनका उत्तर था, 'हम तुम्हारे आश्रित हैं। पाप-पुण्य से हमें क्या प्रयोजन ?' उसे ज्ञान हुआ। वह बदल कर महर्षि वाल्मीकि बन गया। उसकी गुप्त शक्तियाँ यकायक खुल गईं। उन्होंने संसार को अपनी बुद्धि से चमत्कृत कर दिया।

इसी प्रकार न जाने कितने महान पुरुष हुए हैं, जिन्हें किसी मानसिक आघात या आकस्मिक झटके से अपने गुप्त मन में सोई पड़ी गुप्त शक्तियों का ज्ञान हुआ, उनके जीवन का पृष्ठ बदला और वे अपने गुणों से संसार को चमत्कृत, विस्मित कर गए।

आप में भी असाधारण गुप्त शक्तियों—मन, शरीर, आत्मा की असंख्य शक्तियों का भंडार छिपा हुआ है। खेद है कि आप अपने को साधारण प्राणी मानते हैं। आप कभी भी ऐसा विचार नहीं करते कि हम में दिव्य और आश्चर्यमयी शक्तियाँ छिपी पड़ी होंगी। सच मानिए, आप शक्तियों के वृहद् भंडार हैं।

घोड़ों को यदि शारीरिक शक्ति का ज्ञान हो जाए, तो वे हमारे वाहन न रहें। हाथी अपनी शारीरिक ताकतों से विश्व को अपने वश में ही कर ले। शेर, चीता, रीछ, भैंसे, बैल, खच्चर इत्यादि पशुओं को अपनी शक्तियों का ज्ञान हो जाए तो वे हम पर राज्य ही करने लगें।

ये पशु हमारे लिए इतनी तेजी से बड़े-बड़े बोझ ढोते हैं, भारी काम करते हैं, जो मनुष्य नहीं कर सकता। यदि वे सब अपनी शक्तियों को मनुष्य के विरुद्ध लगाएँ तो कदाचित ये हमें अपना वाहन बना सकते हैं। हमारे ऊपर सवारी कर सकते हैं।

जिस प्रकार ऐसे उपयोगी प्राणियों को अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है, ऐसे आपको भी अपनी शक्तियों का पता नहीं है।

हम अशक्त हो अंधेरे में भटक रहे हैं। हम रास्ता ढूँढ़ रहे और पंगु बने हुए हैं।

यदि हमें अपनी शक्तियों का ज्ञान हो जाए तो हमें दुःख, भय, चिंता, आपत्ति, शोक, द्वेष आदि का बिलकुल भी भान न हो, ये दुष्ट मनोविकार हमारा कभी भी कुछ न बिगाड़ सकें, हमारे स्वास्थ्य, मन और जीवन पर इन का कोई भी बुरा प्रभाव न हो। खेद है कि हम इन दुष्टों के आसानी से वश में आ जाते हैं और अपना सर्वनाश कर लेते हैं। हम अपना भाग्य बुरा समझ लेते हैं, संसार फीका-फीका मालूम होने लगता है। जीवन भार स्वरूप प्रतीत होता है।

खेद है कि कभी तो हम ईश्वर पर भरोसा करते हैं, कभी प्रारब्ध को मानने लगते हैं, फिर कभी 'पुरुषार्थ, पुरुषार्थ' कहकर गला फाड़ने लगते हैं। हम कभी स्थिर नहीं रहते। हमारा मन सदैव इसी प्रकार डाँवाडोल रहता है। हम पूजा-पाठ भी करते हैं, पर जब अल्पकालिक और अस्थिर मन से करने के कारण धन-दौलत या सिद्धि प्राप्त नहीं होती तो हमारा विश्वास इन सब पर से उठ जाता है। हम इन्हें ढोंग मानने लगते हैं।

वास्तविक कमजोरी यह है कि अभी हमें स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है। हम दूसरों को धनवान और शान-शौकत से रहते देख उन्हें सुखी समझते हैं, पर यदि हम उन्हें अंदर से देखें तो हमारे विचार बदल जाएँ।

आप पूछेंगे कि लोगों के पास बहुत-सा धन है, सुख है, इतना वैभव, बड़प्पन और अधिकार है, फिर भी दुःख कैसे ? उस पर ईश्वर की बड़ी कृपा है, पर हम पर प्रकोप या ईश्वर की अकृपा कैसे ? हमारे पास ऐश्वर्य के साधन नहीं हैं और उनके बिना हम दुःखी हैं और उनके पास सब साधन हैं, इसलिए वे सुखी हैं। यह आपका केवल भ्रम है। ईश्वर का इसमें कोई पक्षपात नहीं है। ईश्वरीय शक्तियाँ, विपुल ताकतों, मानसिक, शारीरिक, आत्मिक

संपदाओं का जो अंश उनमें है, वही वास्तव में आप में भी मौजूद है। यह याद रखिए कि सतत परिश्रम और एक लक्ष्य सिद्धि से ही भाग्य बनता है। जनता की सतत इच्छा–साधना से देश उठता है। इच्छा एक प्रबल शक्ति है, जो अपना मार्ग खोज ही निकालती है। मूर्खों का प्रारब्ध एक बहाना मात्र है। वास्तव में प्रारब्ध या तकदीर कोई वस्तु नहीं है।

जहाँ कार्य–कारण का अटूट संबंध है, वहाँ प्रारब्ध और तकदीर मानना मूर्खता के अतिरिक्त क्या है ? जिसे विचार करने का मार्ग मालूम नहीं है, जो प्रत्येक कार्य के पीछे काम करने वाले कारण को नहीं जानता है और जीवन के तूफानों से सदा डाँवाडोल रहता है, वही अपने कल्पित भूत–प्रेतों और जीवन के तूफानों से सदा डाँवाडोल रहता है, वही अपने कल्पित भूत–प्रेतों और बुरे ग्रहों का दास बना रहता है।

संकल्प ने परिस्थितियों को परास्त किया

अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक सर वाल्टर स्काट ने किताबें लिखकर स्वयं साझीदार के साथ उन्हें छापने का काम चालू कर दिया। प्रेस भी चलने लगा।

दुर्भाग्य से उसका साथी ईमानदार और लगन वाला न था। दोनों में ही व्यापारिक चातुर्य की कमी थी। नतीजा यह हुआ कि प्रेस घाटा दे गया। अनेक वर्ष तक उसके लाभ में चलने की आशाएँ लगाते रहे। कर्ज दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता गया। प्रेस पर ऋण का बोझ लद गया। साझीदार भाग खड़ा हुआ और सारा ऋण वाल्टर स्काट के ऊपर आ गया।

दिन–रात पर्वत जैसे कर्ज का बोझ सोचते–विचारते कोई साधारण मनोबल का व्यक्ति होता, तो संभव था पागल हो जाता अथवा मानसिक भार से परेशान होकर आत्महत्या ही कर बैठता। उसका मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता, पर वाल्टर स्काट विषम

परिस्थितियों से हार मानने वाले लेखक न थे। वे जीवन युद्ध के वीर सिपाही थे।

उन्होंने ऋण उतारने के लिए लेखन व्यवसाय से संबंधित कई कार्य प्रारंभ किए। कभी कोई मासिक-पत्र प्रकाशित किया, कभी दूसरों की पुस्तकें छापी, अखबार निकाले, असंख्य उद्योग किए। वे विषम परिस्थिति से निकलने की निरंतर कोशिश करते ही रहे। आशा और उत्साह बनाए रहे।

आखिर एक गोली निशाने पर बैठ ही गई। लेखन के प्रयोग में ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में यकायक उनका नाम चमक उठा। वे जमकर महीनों वर्षों तक लिखते ही रहे, उनके पाठक बार-बार उनसे ऐतिहासिक उपन्यासों की माँग करते ही रहे। अंत में उनकी लेखन शैली इतनी परिष्कृत हो गई कि उनका यह व्यवसाय अच्छे लाभ में चल निकला। उन्होंने अनेक सुंदर उपन्यास लिखे, जिनका खूब स्वागत हुआ और उनकी आय से कर्ज का भुगतान हुआ।

अपनी लेखनी के बल पर स्काट ने अपने ऊपर चढ़े लाखों रुपयों के कर्ज को उतार डाला। यही नहीं और भी असीमित धन उपार्जित किया। सदा के लिए उनकी गरीबी गई और स्थाई यश-समृद्धि की प्राप्ति हुई। ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में वे अमर हो गए।

वाल्टर स्काट की सफलता का रहस्य क्या था ?

कभी भी विकट परिस्थिति से हार न मानो। बल्कि जितनी भी कठिन परिस्थिति हो, उतना ही अधिक धैर्य और उत्साह अंदर प्रकट करो। तरह-तरह की कोशिशें करो, कई-कई जगह काम करो। कहीं न कहीं से सफलता प्राप्त हो ही जाएगी। संकल्प की मजबूती, धैर्य और साहस से आदमी जीतता है।

उन्होंने कभी असफलता में हार नहीं मानी और निराशा को पास नहीं फटकने दिया। जिसके पास कभी भी जीतने की आशा

है, काम में उत्साह है और मन में धैर्य है, उसका संकल्प एक न एक दिन निःसंदेह सफल होकर रहता है।

नाविक लड़के का उत्साह

दूसरों को देखते समय भी प्रधानता हमारे अपने ही दृष्टिकोण की हुआ करती है। हताश व्यक्ति को चारों ओर अर्थहीनता, नीरसता ही दिखाई पड़ती है। संकल्पहीन व्यक्ति सदैव दूसरों की विफलता देखते और स्मरण करते रहते हैं तथा भयभीत-आशंकित बने रहकर कभी कोई महत्त्वपूर्ण काम शुरू ही नहीं कर पाते। यह निषेधात्मकता अस्वाभाविक है। इसे मनोविकृति ही कहा जा सकता है। दूसरों को मरते देखकर स्वयं की मृत्यु भी निश्चित मानना एक बात है और उस मृत्यु से भयभीत रहकर जीने से ही कतराने लगना भिन्न बात है। निराश दृष्टिकोण पाल लिया जाए, तब तो किसी भी काम में हाथ लगाते न बनेगा।

एक नदी में मल्लाह का लड़का नाव चला रहा था। नदी में काफी पानी था और नाव गहरे में थी, सहायता के लिए कोई पास न था। एक सौदागर गौर से देर तक उस नाविक लड़के को देखता रहा। लड़का बराबर पतवार चलाता रहा। हिम्मत से आगे बढ़ता ही गया। अंत में नाव किनारे पर आ लगी। सौदागर उससे बातें करने का इच्छुक था।

उसने पूछा—"क्यों जी, तुम्हारे बाबा की मृत्यु कैसे हुई ?"

लड़का आश्चर्य में पड़ गया। अजीव-सा सवाल था वह। इस तरह के सवाल के लिए कदापि तैयार न था।

बाल नाविक ने दुःख भरे स्वर में उत्तर दिया—"नाव चलाते समय दुर्भाग्य से तूफान आ गया। दुर्भाग्य से लहरों का पानी बहुत ऊँचा उठ आया। यकायक नाव पानी में पलट गई और इसी नदी में डूबकर मेरे बाबा की मृत्यु हो गई।"—लड़के की आँखें गीली हो गईं। लड़के का उत्तर सुनकर

सौदागर विस्मय में पड़ गया। वह कुछ देर तक चुप रहा, फिर आगे पूछा—

"और तुम्हारे पिताजी की ?"

अभी सवाल पूरा भी न हुआ था कि बालक ने छूटते ही उसी करुण स्वर में जवाब दिया—

"उनकी भी मृत्यु इसी तरह इसी नदी में तूफान से हुई थी दोनों एक ही तरह मरे।"

अब सौदागर दुःख से उद्विग्न था। मन में परेशानी दबाए था। कुछ देर तक चुप रहकर बोला—"मेरे नन्हें दोस्त ? जब तुम्हारे बाबा और तुम्हारे पिता दोनों ही नाव चलाने के इस खतरनाक काम में मौत के शिकार हुए हैं तो तुम जानबूझकर यह खतरनाक काम क्यों कर रहे हो ? मौत के मुँह में क्यों खेल रहे हो ?"

बालक कुछ देर तक चुप रहा। उसने अपने आँसू पोंछे, कुछ सोचता रहा। क्या करें अपने से बड़े को क्या उत्तर दे ? उसे कोई जवाब नहीं सूझ रहा था।

फिर बोला—"महाशय माफ कीजिए, मैं भी अब आपसे दो-एक सवाल पूछ लूँ।"

सौदागर—"हाँ, हाँ ! शौक से पूछो !"

नाविक बालक ने कुछ सकुचाते हुए पूछा—"महाशय जी ! क्या आप बता सकते हैं कि आपके बाबा और पिताजी की मृत्यु कैसे हुई थी ?"

प्रश्न सुनकर सौदागर विस्मत हुआ। नाविक बालक अपनी उम्र से ऊँचा सवाल पूछ बैठा था। उस पर अपनी बुद्धिमत्ता की छाप डालनी थी। इसलिए सौदागर ने उत्तर दिया—"उन दोनों को तो बीमारी हुई थी और वे घर पर चारपाई पर पड़े-पड़े ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे।"

"तो फिर आप उस घर में क्यों रहते हैं, जिसमें उन दोनों की मृत्यु हुई थी ?"

इस प्रश्न का सौदागर के पास कोई जबाव नहीं था।

मल्लाह के पुत्र ने अपनी बात जारी रखते हुए आगे कहा— "श्रीमान यहाँ या वहाँ, मृत्यु तो सब जगह आती है, फिर हम जिंदा हैं, तब तक हमें आशा और उत्साह मन में रखकर सुंदर से सुंदर भविष्य की कल्पना करनी चाहिए। अभी से ही परेशानी में पड़ने की बात ही क्यों सोचे ? जैसी अच्छी या बुरी स्थिति आगे आएगी, साहस और उत्साह से उसका सामना किया जाएगा, अभी तो आशा लगाकर उन्नति की बात ही सोचें। साहस से आगे बढ़ें।"

यह उत्तर सुनकर सौदागर चकित हो गया। कैसा विलक्षण था उस बालक का उत्साह ! कैसी रंगीन और सशक्त थी उसकी आशा !

उज्ज्वल भविष्य की आशा और लक्ष्य-प्राप्ति में सतत प्रयत्न हेतु दृढ़ संकल्प, सफलता की सीढ़ियाँ हैं।

उन्नति और विकास का मार्ग कठिनाइयों के कँकरीले पथ से ही जाता है। जो व्यक्ति जीवन में कठिनाइयों से घबराता है, उसे उन्नति की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्नति का अर्थ ही ऊँचाई है, जिस पर चढ़ने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है, समतल पर चलने की अपेक्षा कहीं अधिक पसीना बहाना पड़ता है। पतन की ओर चलने में मनुष्य को न तो कोई विशेष श्रम करना पड़ता है और न उसे अधिक विलंब लगता है। यदि दो आदमियों में से एक को निम्नगामी और दूसरे को ऊर्ध्वगामी मार्ग पर चलाया जाए तो जहाँ एक निश्चित दूरी पर पहुँचने के लिए ऊर्ध्वगामी को एक दिन लगेगा वहाँ निम्नगामी को कोई परिश्रम न करना होगा। ऊर्ध्वगामी पसीना-पसीना हो जाएगा।

उन्नति के मार्ग में कठिनाइयाँ स्वाभाविक हैं। यदि ऐसा न होता तो संसार में सभी महान बन सकते थे। कोई साधारण, सामान्य अथवा पतित होता ही नहीं। कठिनाइयों पर विजय पाने का संकल्प जाग्रत रहे, तो वह पूरा होगा ही।

कैसा बीज, कैसे फल

खेत में जिस प्रकार का बीज बोया जाएगा, उसी तरह के पौधे उगेंगे और वैसी ही फसल उगेगी। किसान जो फसल उगाना चाहता है, उसके लिए उसी प्रकार के बीज की व्यवस्था करता है। साथ ही यह भी ध्यान रखता है कि वह बीज सड़ा, घुना, छोटा, पुराना, कमजोर न हो।

जीवन एक खेत है। उसमें प्रगति और सफलता की फसल उगाई जानी है तो ऐसे विचारों का मन:क्षेत्र में आरोपण करना चाहिए जो प्रगति के लिए आवश्यक शक्ति का उद्‌भव कर सकें। साहस और पुरुषार्थ के बिना किसी का आगे बढ़ सकना संभव नहीं। आलस्य और अनियमितता का अवरोध रहते कोई व्यक्ति किसी प्रयोजन में सफल नहीं हो सकता। इन दुर्बलताओं को हटाने के लिए खेत के खरपतवार उखाड़ने-जोतने की तरह हमें किसान का अनुकरण करना होगा।

जीवन का स्वरूप संकल्प बीज की लहलहाती हुई हरी-भरी फसल है। आशा है-अन्न की राशि। मन:क्षेत्र में किन विचारों को स्थान मिले, इसके लिए अत्यधिक सतर्कता की आवश्यकता है। कुछ भी, कैसा ही, बीज बो देने से कुछ भी उग सकता है और उपलब्धि कैसी भी हो सकती है। बीज की ओर से उपेक्षा बरतने वाला किसान अभीष्ट फसल काटने में सफल मनोरथ कैसे होगा ?

प्रगति के लिए प्रयास बहुत किए जाते हैं, पर यह भुला दिया जाता है कि निर्धारित दिशा में प्रेरणा देने वाले और पथ प्रशस्त करने वाले समर्थ विचारों की अभीष्ट मात्रा संकलित कर ली गई या नहीं ?

वैयक्तिक दोष-दुर्गुणों की कँटीली झाड़ियाँ प्रगति के पथ को अवरुद्ध और दुरूह बनाती है। यह दुर्गुण और कुछ नहीं, उन विचारों के प्रतीक प्रतिनिधि हैं, जिन्हें बहुत समय से, ज्ञात या

अविज्ञात रूप में मनःक्षेत्र में संजोए जमाए रखा गया है। सर्प के काटने पर उसका विष एक बूँद ही रक्त में प्रवेश करता है, पर वह कुछ ही देर में समस्त शरीर में फैल जाता है और अपना असर दिखाता है। कुविचार सर्प-दंश की तरह है, वे ही अपना विस्तार कर के दोष-दुर्गुणों के रूप में फैल जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि आंतरिक शत्रु-मनोविकार बाहर के शस्त्रधारी शत्रुओं की अपेक्षा हजार गुने अधिक बलिष्ठ और घातक होते हैं। दूर रहने वाले बाहरी शत्रुओं से बचने और उन्हें निरस्त करने के अनेक उपाय हो सकते हैं, पर अहर्निश सामने रहने वाले इन घर के भेदियों को क्या कहा जाए ? आस्तीन के साँप की तरह वे सदा घातक ही सिद्ध होते हैं।

क्षतिग्रस्त दुर्बल और मरणासन्न शरीर वस्तुतः उस रोग के विषाणुओं का ही खाया हुआ होता है। घुन का कीड़ा चुपचाप लगा रहता है और विशाल शहतीर को खोखला कर देता है। कुविचार विषाणुओं से अधिक घातक और घुन से अधिक अदृश्य होते हैं। वे भीतर जमकर बैठ जाते हैं और गुण, कर्म, स्वभाव की सारी संपदा को खोखली और विषाक्त बना देते हैं।

ओछे स्वभाव के, आदर्श रहित और लक्ष्य विहीन व्यक्ति जीवन की लाश ढोते रहते हैं। उनके मनोरथ सफल हो ही नहीं सकते, क्योंकि प्रगति के लिए, प्रखर व्यक्तित्व की आवश्यकता है।

सफल जीवन जीने की आकांक्षा यदि साकार करनी हो तो पहला कदम आत्मनिरीक्षण का उठाया जाना चाहिए। अपने विचारों, मान्यताओं और अभिमान की समीक्षा करनी चाहिए और उनमें जितने भी अवांछनीय तत्त्व हों उनका उन्मूलन करने के लिए संकल्पपूर्वक जुट जाना चाहिए। संकल्प शक्ति की साधना और आत्मनिरीक्षण से व्यक्तित्त्व को इच्छित ऊँचाई तक पहुँचाया जा सकता है।

प्रबल संकल्प शक्ति की प्रचंड प्रतिक्रियाएँ

नदी जब समुद्र में मिलने की प्रबल आकांक्षा से अभियान प्रारंभ करती है तो उसकी गति रोकने वाले अवरोधों को परास्त ही होना पड़ता है। समुद्र से मिलने की प्रबल आकांक्षा, आवश्यकतानुसार उसे विरोधी चट्टानों को कभी काटने पर विवश करती है तो कभी इधर-उधर घूमकर रास्ता निकाल लेने की प्रेरणा देती है। उसकी प्रबल इच्छा उसे अपनी लक्ष्यसिद्धि के लिए कभी टक्कर लेने, कभी निम्न होने, कभी रास्ता बदलने और कभी मंद मंथर हो जाने का ज्ञान देती है। उसका वांच्छित लक्ष्य सागर से मिलन होता है और वह उसे किसी न किसी प्रकार संघर्ष अथवा सामंजस्य पूर्ण नीति से प्राप्त कर ही लेती है। वह किन्हीं कारणों से हार कर निराश अथवा निरुत्साह होकर गतिहीन नहीं होती। इसलिए कि उसकी इच्छाशक्ति में सच्चाई और प्रबलता होती है।

नदी की तरह ही वह मनुष्य भी अपनी सफलता के लिए मार्ग निकाल ही लेता है, जिसकी इच्छाशक्ति दृढ़ और बलवती होती है। उसकी इच्छा स्वयं ही उसका मार्ग प्रदर्शित करती चलती है। सफलता का मूल मनुष्य की इच्छाशक्ति में सन्निहित रहता है। मानवीय शक्तियों में उसकी इच्छाशक्ति सबसे प्रबल और प्रमुख होती है। जिन मनुष्यों की इच्छाशक्ति निर्बल होती है, वे साधन संपन्न होने पर भी कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त कर पाते। निर्बल इच्छाशक्ति वाले लोग मार्ग में आई एक साधारण-सी कठिनाई अथवा सामान्य विरोध को देखकर हिम्मत खो बैठते हैं।

मनुष्य की शारीरिक शक्ति का अपना महत्त्व है, लेकिन उसकी संचालिका शक्ति इच्छाशक्ति ही होती है। यदि इच्छाशक्ति का अभाव हो जाए तो मनुष्य की शारीरिक शक्ति भी कुंठित हो जाएगी। शरीर पर इच्छाशक्ति का ही शासन होता है। शरीर क्या है ? इंद्रियों का संगठन-समूह। इंद्रियों का कार्य ही शरीर का कार्य होता है। इंद्रियाँ इच्छाशक्ति से ही कार्य की प्रेरणा पाती है। कोई कितना भी आवश्यक काम क्यों न हो, इंद्रियाँ सक्षम और प्रस्तुत क्यों न हो, जब तक इच्छाशक्ति की प्रेरणा न होगी वे बंधी बैठी रहेंगी, किसी काम में हाथ न लगाएँगी। जब इच्छा का स्फुरण होगा, उसकी प्रेरणा होगी तभी इंद्रियाँ कार्यरत हो जाएँगी। शरीर इंद्रियों के और इंद्रियाँ इच्छाशक्ति के आधीन होती है। इच्छाशक्ति की जागरूकता के बिना मनुष्य कोई भी कार्य करने में सक्षम नहीं हो सकता।

संसार के छोटे-बड़े सभी कार्य शक्ति द्वारा ही पूरे होते हैं। शक्ति के बिना मनुष्य एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। श्वाँस लेने की सामान्य प्रक्रिया से लेकर पहाड़ काटने तक के कठिन काम शक्ति द्वारा ही संपादित किए जाते हैं। जब तक शक्ति है, तब तक कर्म है, तब तक जीवन है। शक्ति के समाप्त होते ही क्रिया स्थगित हो जाती है और क्रिया के स्थगित होते ही जीवन समाप्त हो जाता है। अपाहिज, असाध्य, अकर्मण्य आदि सब, जिनकी क्रियाएँ स्थगित हो गई होती हैं, जो किसी मतलब और मसरफ के नहीं रहते, वे एक बार प्राण भले ही ढो रहे हों, पर होते मृतक समान ही हैं।

मनुष्य की यह वास्तविक शक्ति है क्या ? वह वास्तविक शक्ति मनुष्य की इच्छाशक्ति ही है। क्योंकि यही जीवन के चिह्न कर्म की विधायिका तथा प्रेरिका होती है। जहाँ इच्छा नहीं, वहाँ

कर्म नहीं और जहाँ इच्छा है वहाँ कर्मों का होना अनिवार्य है, इच्छा की प्रेरणा से ही मनुष्य कर्मों में प्रवृत्त होता है। यदि उसमें इच्छा की स्फुरणा नहीं, उसकी प्रेरणा न हो तो मनुष्य भी जड़ बन कर पड़ा रहे। आदि काल से मनुष्य अब तक जो विकास और उन्नति करता आया है, वह सब इच्छाशक्ति का ही चमत्कार है। मनुष्य में यदि इच्छाशक्ति की विशेषता न होती तो वह अब तक भी दो हाथ-पैरों वाला वनमानुष बना, अन्य पशुओं की तरह ही जीवन बिताता, गुफा-कंदराओं में पड़ा होता। इस प्रकार आश्चर्यजनक साधनों के साथ शान से देवताओं से एक पद पूर्व न रहा होता। जिनमें इच्छाशक्ति का प्राबल्य होता है, वे अब भी अपनी साधना और तपश्चर्या के बल पर देवताओं के समकक्ष होना तो क्या परमात्मा के समकक्ष हो जाते हैं। जीवन की समग्र उन्नतियाँ और सारी सफलताएँ इच्छाशक्ति के ही अधीन होती हैं।

नव सृजन, नव चेतना, नव निर्माण की जो भी क्रांतियाँ संसार में हुई हैं अथवा होती हैं, उनका आधार मनुष्य की प्रबल इच्छाशक्ति ही होती है। संसार में अब तक जो भी महान और उल्लेखनीय काम हुए हैं, उनको उन्हीं महामानवों ने संपादित किया है, जिनकी इच्छाशक्ति प्रबल और प्रखर रही है। निर्बल इच्छाशक्ति वाले लोग संसार में अब तक न कोई उल्लेखनीय कार्य कर सके हैं और न आगे ही कर सकेंगे। निर्बल इच्छाशक्ति वाले व्यक्तियों के मन में महानता, सफलता और उन्नति के विरोधी भाव, जैसे संदेह, आशंका, भय और अविश्वास आदि भरे रहते हैं। उसे अपने कुविचारों, कुकल्पनाओं और कुप्रवृत्तियों के जाल से निकलने का अवकाश ही नहीं मिलता जिससे वह श्रेय-पथ पर अग्रसर हो सके। वह स्वभावतः अस्थिर विचार, अस्थिर उद्‌देश्य और अस्थिर निश्चय वाला होता है। एक काम को तब तक करते रहने का धैर्य उसमें

नहीं होता जब तक कि उसका अंतिम निष्कर्ष न निकल आए। वह जल्दी ही एक काम को छोड़कर दूसरा और दूसरे को छोड़कर तीसरा पकड़ता रहता है। अपनी इच्छाशक्ति की अदृढ़ता के कारण वह एक छोटी-सी कठिनाई से ही भयभीत तथा उद्विग्न हो जाता है और जल्दी ही कर्त्तव्य से हट जाता है। इच्छाशक्ति की निर्बलता मनुष्य के समग्र जीवन की निर्बलता है।

निर्बल इच्छा शक्ति की हानियाँ

प्रबल इच्छाशक्ति जहाँ एक प्रकार की अमोघ औषधि है वहाँ निर्बल इच्छाशक्ति विविध प्रकार के रोगों की जननी होती है। जिसकी इच्छाशक्ति निर्बल होती है, वह एक छोटे से रोग में ही अपनी मृत्यु की कल्पना करने लगता है। उसके विचार प्रतिगामी होते हैं। वह रोगों का उपचार भी करता है तो भी सोचता रहता है कि औषधि उसे लाभ नहीं कर रही है। बहुत बार तो वह काल्पनिक रोगों के भय से ही त्रस्त बना रहता है और देर-सबेर उस प्रकार का रोग उत्पन्न ही कर लेता है। मानस चिकित्साशास्त्रियों ने अपने अनुभव के आधार पर बतलाया है कि वास्तविक रोगियों की अपेक्षा ऐसे रोगियों की संख्या अधिक होती है जो अपनी प्रतिगामी कल्पना के कारण अपने को रुग्ण तथा अस्वस्थ समझते रहते हैं। यह अनेक प्रयोगों के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है कि यदि मनुष्य की इच्छाशक्ति प्रबल हो तो वह बिना किसी उपचार के रोगों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

निर्बल इच्छाशक्ति की हानियाँ केवल व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहतीं। वे समाज पर भी अपना प्रभाव डालती है। मनुष्य की इच्छाशक्ति में एक प्रकार की अदृश्य तरंगें होती हैं जो मानसिक गतिविधियों से निकल कर वातावरण में फैल जाती हैं और दूसरों

को प्रभावित करती हैं। उनके मानसिक भावों को अपने प्रकार का बनाने का प्रयत्न करती हैं। यही कारण है कि जिस स्थान पर कमजोर और कायर मन वाले लोग रहते हैं वहाँ प्रायः भय और आशंका का वातावरण बना रहता है। किसी संगठन में दुर्बल इच्छाशक्ति वाले अपनी गतिविधियों से औरों को भी निर्बल और हतोत्साह बना देते हैं। युद्ध में एक कायर सैनिक भागकर और भी अनेक सैनिकों को भागने की प्रेरणा देता है। जिस देश, समाज अथवा राष्ट्र के नेता निर्बल इच्छाशक्ति वाले होते हैं वह देश, समाज अथवा राष्ट्र बहुधा अवनति और पराभव के ही अधिकारी बनते हैं। नेता का प्रभाव विस्तृत होता है, उसमें जनगण का विश्वास होता है,। इसी कारण, नेता यदि निर्बल इच्छाशक्ति वाला होता है तो उसकी संक्रामकता, निर्बलता जनता का भी हृदय दुर्बल बना देती है। सारे राष्ट्र में भय, आशंका और कायरता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। जहाँ इस तरह पाप-अभिशाप जनगण को दबाए होते हैं, वहाँ उन्नति, प्रगति अथवा विजयश्री का पदार्पण नहीं होता।

इसके विपरीत जिस समाज अथवा राष्ट्र के नेता प्रबल इच्छाशक्ति वाले होते हैं, वह समाज और राष्ट्र भी प्रबल तथा शक्तिशाली बना रहता है, फिर चाहे वह विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से छोटा ही क्यों न हो। जापान, इंगलैण्ड और जर्मनी आदि देश इस बात के ज्वलंत प्रमाण हैं। भारत में भी राणा प्रताप, शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, हम्मीर देव आदि के अनेक ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जो साधन और सैन्य शक्ति की दृष्टि से नगण्य होने पर भी सर्वसंपन्न मुगल बादशाहों के अत्याचारों से टक्कर लेते रहे। महात्मा गाँधी तो प्रबल इच्छाशक्ति के एक जीते-जागते आदर्श थे। उनके पास एक प्रबल, दृढ़ तथा प्रखर इच्छाशक्ति को छोड़कर और क्या साधन थे ? न सेना न शस्त्र और न साम्राज्य, तथापि उन्होंने अपनी एक

उस अमोघ इच्छाशक्ति के आधार पर उदयास्त पर्यन्त फैले अंग्रेजी साम्राज्य से टक्कर ली और अपनी शांति-अहिंसा की नीति से ही उनकी तोपों, बंदूकों, गनमशीनों और सेनाओं की शक्ति को पराभूत कर दिया। महात्मा गांधी की प्रबल इच्छाशक्ति का ही तो यह चमत्कार था कि उनके नेतृत्व का भारत आबाल वृद्ध स्त्री-पुरुषों के साथ साधनहीन होने पर भी अजेय बन गया था। इच्छाशक्ति की महिमा अपार और अपूर्व है।

यदि हमें अपने जीवन को उन्नति और प्रगति के द्वारा सार्थक बनाना है तो अपनी इच्छाशक्ति को बढ़ाना और प्रबल बनाना होगा। तभी हममें दृढ़ता, साहस और कार्य क्षमता का विकास होगा। हम उत्साही, वीर और संकल्पवान बनेंगे। हम में वह कर्मठता आएगी जो जीवन-पथ की बाधाओं तथा विपत्तियों से भी कुंठित न हो सकेगी। सफलता का पथ निश्चय ही बड़ा कठिन और दुर्गम होता है। उसको सरल और प्रशस्त बनाने में मनुष्य की इच्छाशक्ति का बड़ा उपयोग है। इच्छाशक्ति की दृढ़ता और प्रबलता मनुष्य को पराक्रमी, पुरुषार्थी और धीर-गंभीर बना देती है। प्रबल इच्छाशक्ति वाला जिस काम में हाथ डालता है, उसे तब तक नहीं छोड़ता जब तक पूरा नहीं कर लेता। वह बाधाओं, विरोधों से साहसपूर्वक लड़ता हुआ बढ़ता रहता है। उन्नति और सफलता का इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

संसार की सारी सफलताओं का मूल मंत्र है—प्रबल इच्छाशक्ति। इसी के बल पर विद्या, संपत्ति और साधनों का उपार्जन होता है। यही वह आधार है जिस पर आध्यात्मिक तपस्याएँ और साधनाएँ निर्भर रहती हैं। यही वह दिव्य संबल है जिसे पाकर संसार में खाली हाथ आया मनुष्य वैभव और ऐश्वर्यवान बनकर संसार को चकित कर देता है। यही वह सम्मोहन और वशीकरण मंत्र है

जिसके बल पर एक अकेला पुरुष कोटि–कोटि जनगण को अपना अनुयायी बना लेता है। जीवन में उन्नति और सफलता की आकांक्षा करने से पहले अपनी इच्छाशक्ति को प्रबल तथा प्रखर बना लेने वालों को न कभी असफल होना पड़ता है और न निराश। वे अपनी मनोवांछित विजय–माल पहनकर ही मानते हैं। किसी वस्तु की प्राप्ति की लालसा को इच्छा कहते हैं। इस लालसा की तीव्रता को इच्छाशक्ति कहते हैं।

शारीरिक शक्ति से कई गुनी अधिक इच्छाशक्ति

इच्छाशक्ति के प्रभाव के संदर्भ में श्री योगानंद ने अपनी पुस्तक "ऑटोबायोग्राफी आफ ए योगी" में बंगाल में उन दिनों 'टाइगर योगी' के नाम से प्रसिद्ध सोहंग स्वामी का विवरण उन्हीं के शब्दों में यों दिया है—

'कह नहीं सकता किस जीवन के कौन से संस्कार थे कि शरीर तो दुबला–पतला ही था, किंतु बाल्यावस्था से ही मन किया करता कि कोई शेर या चीता मिले तो उससे कुश्ती लड़ूँ। यह कमजोर शरीर ही था जो निराश करता था वरना राजकुमार भरत की तरह बचपन में ही कई बार बाघ के दाँत तोड़ चुका होता।'

'जो इच्छाशक्ति कुछ दिन पहले जंगली जानवरों से लड़ने की ओर मुड़ी थी, अब वह अंतर्मुखी हो उठी। मैं दिन–रात यही सोचा करता कि मैं बहुत शक्तिशाली हो जाऊँ, मेरा शरीर बलवान हो जाए, मेरे रग–पुट्ठे सुदृढ़ और सुडौल हो जाएँ, मुट्ठी भीचूँ तो हथेलियों से पसीना छूट जाए। मुझे तब पता नहीं था कि इच्छाशक्ति में भी कुछ जादू होता है, पर मैंने उसे अपने आप में सचमुच जादू पाया। मेरा स्वास्थ्य दिनों दिन अच्छा होता गया और मैं एक हट्टा–कट्टा युवक बन गया।'

'अब मन-चीती करने का समय आ गया तो मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। मैं विचार करता कि जंगल के ये बड़े जंतु छोटे जीव-जंतुओं को पकड़कर खा जाते हैं, तो गुस्से से मेरी आँखें लाल हो जाती थीं। बड़े जीवों द्वारा छोटों को सताया जाना मुझे कतई पसंद नहीं था। इसलिए मैंने निश्चय किया जंगल के इन हिंसक जंतुओं को सबक सिखाना चाहिए। इसी निश्चय के साथ मैं जंगल जाने लगा।'

'अब तक मेरी इच्छाशक्ति पूर्ण प्रौढ़ और प्रखर हो चुकी थी। भय नाम की भी कोई वस्तु होती है, यह मैंने पूरी तरह भुला दिया। एक बार जब जंगल में प्रविष्ट हो जाता तो वहाँ के हिंसक से हिंसक बाघ, शेर, चीते भी मुझे मूषकों और भेड़-बकरियों की तरह लगते। एक बार जब निश्चित कर लिया तो यह मेरे प्रतिदिन के जीवन का एक अंग बन गया। मैं प्रतिदिन जंगल जाता, हिंसक जीव मुझे साक्षात् काल के समान देखते और दूर से ही भाग जाते। वह बड़ा दुर्भाग्यशाली होता जो एक बार भी मेरी दृष्टि में पड़ जाता। आँख से आँख मिलाते ही मेरी प्रमुख इच्छाशक्ति उसके मन पर बुरी तरह आघात करती और वह जंतु भले ही शेर ही क्यों न रहा हो बिल्ली बन जाता, पूँछ दबाकर दया की भीख माँगता, पर मुझ निष्ठुर 'सोहंगस्वामी' से बचकर जाना उसके लिए कठिन होता। जी भर पीटता-पटकता और जिस पर दया न आती मार कर ही छोड़ता। स्मरण नहीं ऐसे कितने बाघ, चीते, लकड़बग्घे मारे होंगे। मेरी इन वारदातों का ही परिणाम था कि लोग मेरा 'सोहंगस्वामी' नाम तो भूल गए, पर मैं एक नए 'टाइगर योगी' के नाम से सारे बंगाल प्रांत में विख्यात हो गया। मेरे पास इससे संबंधित जानकारी के लिए प्रतिदिन देश-विदेश से सैकड़ों पत्र आते, पर मुझे इस व्यवसाय से ही फुरसत कहाँ मिलती थी ? जो उनके उत्तर देता।'

'एक दिन की बात है, एक साधु मेरे घर आए। मैं तब जंगल में ही था। उन्होंने मेरे पिताजी को बुलाकर कहा—आपका लड़का जंगली जीवों को सताता है, यह अच्छी बात नहीं है। उसे तुम रोको अन्यथा कभी कोई भयंकर परिणाम भी निकल सकते हैं।

पिताजी ने साधु को प्रणाम करते हुए कहा—महात्मन् ! मेरा लड़का छोटे कमजोर जीवों को नहीं सताता, वह तो हिंसक जीवों को मारता है, वह भी निहत्थे तब फिर इसमें दोष क्या है ?

दोष ! साधु बोले—किसको कब दंड देना है, कैसे देना है ? यह ईश्वर का काम है, मनुष्य का नहीं। तुच्छ विचारों की उत्पत्ति संभवतः इच्छाशक्ति का निम्नगामी रूप है। परमात्मा नहीं चाहता कि मेरी सृष्टि में कायर, कमजोर, अमंगल इच्छाएँ रहें। निर्बलता तो प्रकृति को भी कतई पसंद नहीं। तभी तो शेरनी अपने चोट खाए या उस जख्मी बच्चे को भी खा जाती है जो दौड़ने, चलने-फिरने में उसका साथ दे नहीं सकता। 'जीवः जीवस्य भक्षणम्' छोटा जीव बड़े जीव का आहार, प्रकृति के किसी उपयोगी सिद्धांत के आधार पर ही काम करता है, यह काम पूर्णतया प्रकृति का है। मनुष्य को अपने कल्याण का मार्ग बनाना और उस पर चलना ही कौन-सा कम कठिन है जो वह प्रकृति के सिद्धांतों से व्यर्थ टक्कर ले।

साधु की सारी बातें पिताजी ने ध्यान से सुनीं और फिर जब मैं जंगल से लौटा तो मुझ से भी कहीं। एक बार तो मुझे उन बातों में कुछ सार सा प्रतीत हुआ, किंतु मैंने दूसरे ही क्षण उस उपदेश की भी उपेक्षा कर दी। अब मुझे हिंसक जंतुओं से भिड़ने और उन्हें मारने में आनंद आने लगा था। उसे छोड़ना कठिन बात थी, तो भी मुझे ऐसा लगा कि मेरे सामने कोई ईश्वरीय सत्ता भी अवश्य है और उसके क्रिया-कलापों में हस्तक्षेप का पाप मुझे नहीं करना चाहिए। इसलिए अब कई बार मैं अपने आप को कुछ कमजोर और

भयभीत भी अनुभव करता। मुझे इसके लिए उस साधु पर कभी-कभी गुस्सा भी आ जाया करता।'

'संकल्प-विकल्प के इन दिनों में मेरी ख्याति कम से कम बंगाल में तो घर-घर थी ही। कूच बिहार के राज्याध्यक्ष ने भी यह खबर सुनी। उन्हें जंगली जानवर पालने का बड़ा शौक था। इसलिए वे जंगली जंतुओं के हिंसक स्वभाव से भी अच्छी तरह परिचित थे। मेरे करतब उन्हें अद्भुत, आश्चर्यजनक और तांत्रिक से लगे। फलतः उन्होंने अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए मुझे कूच बिहार आने और उक्त प्रदर्शन करने का निमंत्रण दिया। वहाँ की प्रजा भी मेरी बाघ से कुश्ती देखने को बहुत लालायित थी। कई चुनौती भरे पत्र मेरे पास आते थे। इसलिए न चाहते हुए भी मुझे यह निमंत्रण स्वीकार करना ही पड़ा।'

'ईश्वर के विधान बड़े विलक्षण हैं, उन्हें मानवीय बुद्धि समझ सके ऐसा संभव नहीं है। जिन दिनों यह पत्राचार चल रहा था, उन दिनों कूच बिहार में कहीं से एक बहुत खूँख्वार बाघिनी आ गई। उसका इतना आतंक होने पर भी पता नहीं कैसे वह जीवित कैद में आ गई, वह भी स्वयं वहाँ के राजकुमार द्वारा। शाही कटघरे में रहने वाली इस बाघिन का नाम 'राजबेगम' था और मुझे उसी से लड़ाए जाने का वहाँ के राजा साहब ने निश्चय कर लिया था।'

'उन्होंने कुछ छल किया हो सो बात नहीं थी। उनने तो सारी बातें वहाँ पहुँचने पर मुझे स्पष्ट बता दी थी, पर यदि मैं अपने वचन से हटता तो यह मेरे आत्माभिमान पर आघात होता, अतएव मैंने राजबेगम से लड़ने का निश्चय कर लिया, पर न जाने क्यों उस दिन मुझे साधु के वे शब्द जो उन्होंने पिताजी से कहे थे, एक चेतावनी की तरह बार-बार याद आते थे, तो भी मैं यों ही एकाएक भयभीत होने वाला न था। मेरा निश्चय आखिर तक अटल रहा।'

'यह दृश्य देखने के लिए अखबारों में पहले से ही समाचार छापे गए। भीड़ बरसात के पानी की तरह उमड़ पड़ी। जिस मैदान में यह प्रदर्शन होना था, कँटीले तारों से सुरक्षित कर पिंजरा जिसमें बाघिन बंद थी, मैदान में रख दिया गया। हजारों लोगों के सामने मैं लँगोट पहनकर निहत्था ही पिंजड़े की ओर बढ़ा।'

'बाघिन मुझे देखकर गुर्राई, किंतु मुझे उससे कुछ भी भय न लगा। पिंजरा खोलकर उसमें प्रविष्ट हो गया। चाभी मैंने वहीं फेंक दी, केवल एक चैन मेरे हाथ में थी, जिससे बाघिन को बाँधने के लिए कहा गया था।'

'मेरे पिंजरे में प्रवेश करते ही बाघिन टूटकर मेरे ऊपर आ झपटी और मेरे पीठ के दाहिने पुट्ठे पर घाव करती हुई मुट्ठीभर माँस नोंच ले गई। मैं हक्का-बक्का रह गया। एक बार दर्द से सारा शरीर काँप उठा। खून दाढ़ में लग जाने से बाघिन और भी उत्तेजित हो उठी। उसने देर किए बिना दूसरा झपट्टा लगाया, पर अब मैं सँभल चुका था। मैंने अपना वही इच्छाशक्ति वाला दाव लगाया। बाघिन की आँखों में आँखें डालकर मैंने उसके मन में दुर्दांत प्रहार किया और ऐसा करना भर था कि बाघिन कटे वृक्ष की तरह अपने आप धराशाही हो गई। अब पूरे गुस्से के साथ मैं उस पर टूटा और लात-घूँसों की बौछार से उसे बेदम कर दिया। मेरी इच्छाशक्ति बराबर काम कर रही थी। उसी का परिणाम था कि इतनी खूँख्वार बाघिन मरी बिल्ली जैसी सिमटी-सी पड़ी थी। अब उसमें आक्रमण करने की शक्ति नहीं थी, तथापि वह गुर्रा कर अपना क्रोध अवश्य प्रकट कर रही थी। ऐसे में ही आगे बढ़कर मैंने उसको चैन में बाँधा और विजयी योद्धा की भाँति चारों ओर खड़ी भीड़ की ओर देखा। सब लोग आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से उछल पड़े। मेरा हार्दिक स्वागत किया गया।

उपस्थित लोगों ने मुझे फूल और हारों से लाद दिया, बहुत-सा पुरस्कार भी मुझे मिला।'

'किंतु घर लौटा तब पता चला कि साधु का कथन असत्य नहीं था। घाव होने के कारण शरीर में विष हो गया और उसे ठीक होने में लगभग ६ महीने लगे।'

'इसी बीच एक दिन वह साधु फिर प्रकट हुए, उन्होंने मुझे समझाया—बेटा! अब ऐसा नहीं करना। उन्होंने योगाभ्यास की कुछ क्रियाएँ भी बतलाईं और कहा—इच्छाशक्ति का बल तुम्हारे पास है। चाहते तो आत्मकल्याण और ईश्वर दर्शन जैसी महान उपलब्धि प्राप्त करते, पर व्यर्थ ही खेल-खिलौनों में लगे रहे। योगी लोग ईश्वर प्राप्ति और आत्मदर्शन का पुरुषार्थ साधते हैं, चमत्कारों के चक्कर में नहीं पड़ते। उन्होंने मुझे दवा भी दी, उसी से मेरा घाव ठीक हुआ। साथ ही उनकी बात भी अच्छी तरह समझ में आ गई और मैंने आत्मकल्याण के लिए उच्चस्तरीय योग साधनाएँ करने का निश्चय कर लिया।'

अपने जीवन में इच्छाशक्ति के प्रयोग का यह महत्त्वपूर्ण वर्णन सुनाने वाले यह सोहंग स्वामी कलकत्ता में जन्मे एक महान योगी हो गए हैं। उन्हें बंगाल में टाइगर स्वामी के नाम से आज भी लोग याद करते हैं। एक बार उनकी ख्याति सुनकर श्री स्वामी योगानंदजी उनसे मिलने गए, उन्होंने पूछा—आप खूँख्वार जानवरों से कैसे लड़ते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—शारीरिक शक्ति से मानसिक शक्ति कहीं अधिक प्रखर होती है। यदि हम दृढ़ विश्वास कर लें कि बाघ नहीं बिल्ली है तो वह बिल्ली ही हो जाएगी। जरूरत पड़े तो मैं अभी भी चीतों के दाँत, यह कहते हुए वे उठे और सामने सीमेंट में लगी दुकान में धँसी साबुत ईंट को पकड़कर निकालते हुए बोले—इस तरह

पकड़कर निकाल सकता हूँ। स्वामीजी को उनकी क्षमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

उन्होंने बताया—इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है। अब तो विज्ञान भी सिद्ध करता है कि मस्तिष्क ही है जो मांसपेशियों को नियंत्रित करता है। मस्तिष्क जितना बलवान होगा, उतना ही सूक्ष्म शरीर काम करेगा। जितनी शक्ति से हथोड़े का प्रहार किया जाता है, उतनी ही गहरी चोट लगती है। उसी प्रकार शरीर हथोड़ा और उसे शक्ति देने वाली मशीन तो मन या इच्छाशक्ति है। शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन इस बात पर निर्भर है कि इच्छाशक्ति में कितना बल है। शरीर एक यंत्र है। उसका उपयोग चाहे जैसे कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि मन, शरीर और इंद्रियों का दास होगा, तो वह कुछ भी नहीं कर सकेगा।

श्री योगानंद ने प्रश्न किया—क्या मैं भी बाघ से लड़ सकता हूँ, इस पर उन्होंने हँसते हुए कहा—भाई! बाघ से कोई भी लड़ सकता है, पर अपनी लालसाओं, कामनाओं, वासनाओं से लड़कर उन पर विजय पाना अति दुस्तर कार्य है। जो वह कर ले, समझ लो वह सैकड़ों बाघों को जीत चुका। अब मैं भी उसी दिशा में आ रहा हूँ। जो मुझे पहले ही करना चाहिए था, वह अब कर रहा हूँ। शक्ति प्रदर्शन में तो मैंने व्यर्थ ही इतना जीवन बिता दिया। इस प्रकार सोहंग स्वामी ने इच्छाशक्ति का महत्व तो स्पष्ट किया ही, उसके सदुपयोग की दिशा भी बतलाई।

अन्यायी की इच्छा अहंकार मात्र

किसी वस्तु के अभाव में जो एक वेदनापूर्ण अनुभूति होती है, वही इच्छा की तीव्रता है। जिसकी न्यूनाधिकता के अनुपात से ही

इच्छा में शक्ति का संपादन होता है। यह तीव्रता किस दिशा में होगी, इसका संबंध आस्थाओं, संस्कारों और आदर्शों से है।

मनुष्यों की इच्छा अनेक प्रकार की हो सकती है। वे अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की हो सकती हैं। मनुष्य की इच्छाएँ उसकी आंतरिक अवस्था की द्योतक हैं। जिस मनुष्य की इच्छाएँ स्वार्थपूर्ण हैं, वह अच्छा आदमी नहीं। उसकी इच्छाओं में सात्विक शक्ति नहीं होती, जिसके बल पर बड़ी से बड़ी उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है।

अन्याय एवं अनीतिपूर्ण इच्छाएँ रखने वाला भले ही किसी संयोग, युक्ति अथवा परिस्थिति का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर ले, तब भी यह न मानना चाहिए कि इसने इच्छाशक्ति के बल पर अपनी वांछा को पूर्ण कर लिया है या यों कहना चाहिए कि यह उसकी इच्छाशक्ति की तीव्रता है, जिससे वह अपने लक्ष्य में सफल हो सका है। सफल होने के लिए अनीतिपूर्ण योजनाएँ भी सफल होती रही हैं। इतिहास में ऐसे अनेक अत्याचारियों, अन्यायियों एवं बर्वरों के उदाहरण पाए जाते हैं, जिन्होंने अपनी अन्यायपूर्ण इच्छाओं को पूरा कर लिया है, साम्राज्य स्थापित किए हैं, विजय प्राप्त की हैं।

कहा जा सकता है कि यह उन अत्याचारियों की इच्छाशक्ति का परिणाम है कि वे ऐसी-ऐसी विजयों को प्राप्त कर सके हैं, किंतु यदि वास्तव में तात्विक दृष्टि से देखा जाए तो पता चलेगा कि वे विजय अत्याचारियों की तीव्र इच्छाशक्ति का फल नहीं थीं बल्कि विजेतों की निर्बल इच्छाशक्ति का परिणाम थीं। जब किसी एक वर्ग की विजयेच्छा नष्ट हो जाती है तभी, आक्रामक की अनीतिपूर्ण होने पर भी विजय-वांछा पूर्ण हो जाती है।

अन्यायी की इच्छाओं में स्वयं अपनी कोई इच्छा नहीं होती, वे वास्तव में अहंकार द्वारा ही प्रेरित हैं। यदि अन्यायी के अहंकार का हरण कर लिया जाए, उसे ध्वस्त कर दिया जाए तो वह विश्व का सबसे निर्बल और निरीह प्राणी हो जाता है। यही कारण है कि अहंकार का उन्माद उतरते ही उसकी सारी शक्तियाँ ठीक उसी प्रकार समाप्त हो जाती हैं, जिस प्रकार नशे की उत्तेजना उतरते ही कोई मद्यप मुर्दे की तरह निर्जीव हो जाता है। उसका सारा जोश-खरोश, वेग-आवेग आदि आंदोलनपूर्ण क्रियाएँ खत्म हो जाती हैं और वह एक साधारण से साधारण व्यक्ति के हाथ कुत्ते की मौत मारा जाता है।

अनीतिपूर्ण इच्छाओं में कोई स्थायित्व नहीं होता। वे बरसाती नदी की भाँति उफनती हैं और शीघ्र ही ठंडी पड़ जाती हैं। अन्यायी इच्छाओं से अभिभूत होता है। उनसे उत्तेजित होता है, उन्हें पूरा करने के लिए व्याकुल रहता है और उनके वेग में एक शक्ति भी अनुभव करता है, किंतु फिर भी अहंकार का लाख आवरण डालने पर भी वह इस विचार से मुक्त नहीं हो पाता कि उसकी इच्छाएँ अनुचित हैं। वह स्वयं अपनी दृष्टि में अपराधी बना रहता है और बहरे-अंधों से भी भयभीत रहता है। यही कारण है कि उसकी इच्छाओं में न तो कोई शक्ति रहती है और न वे जीवन-लक्ष्य बनकर स्थायित्व प्राप्त कर पाती हैं। प्रतिकूल परिस्थिति आने पर वह इच्छाओं को छोड़ देता है, उनमें परिवर्तन कर लेता है और कभी-कभी तो उनकी भयंकरता से वह जीवन के रणक्षेत्र से ही भाग खड़ा होता है। अत्याचारी अथवा अन्यायी की सफलता वस्तुतः उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती, बल्कि उसके उस अहंकार की ही परिपुष्टि होती है, जिसके आवेग से वह त्रस्त, दुःखी एवं विकल रहता है।

सदिच्छुक का कर्त्तव्य बुद्धि के तर्क, विवेक की भर्त्सना अथवा आत्मा के धिक्कार से प्रभावित नहीं होता, बल्कि उनका सहयोग पाकर उसकी इच्छाएँ और भी अधिक बलवती एवं सुनिश्चित हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त आत्मकल्याण और परोपकार की भावना के कारण वह दिनों-दिन सदाचारी, सच्चरित्र एवं सत्यमूर्ति बनकर दूसरों की सद्भावना, सहयोग तथा सहायता प्राप्त करता हुआ अधिकाधिक शक्ति संपन्न होता जाता है। सदिच्छाएँ स्वयं शक्तिमती होने के साथ-साथ दूसरों से भी शक्ति संचय करती रहती हैं।

विरोध करना आज लोगों का स्वभाव बन गया है। यहाँ पर क्या अच्छे कार्य और क्या बुरे, विरोध सबका ही किया जाता है, बल्कि वास्तव में यदि देखा जाए तो पता चलेगा कि बुराई से अधिक भलाई को विरोध का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह नहीं है कि भलाई भी बुराई की तरह ही विरोध की पात्र है, बल्कि समाज की दुष्प्रवृत्तियाँ अपने अस्तित्व के प्रति खतरा देखकर भड़क उठती हैं और विरोध के रूप में सामने आ जाती हैं। चूँकि सत्प्रवृत्तियाँ विरोध भाव से शून्य होती हैं इसलिए वे बुराई का विरोध करने से पूर्व सुधार का प्रयत्न करती है। ध्वंसात्मक न होने के कारण वे बुराई के विरोध को भयंकरता के रूप में उपस्थित नहीं करती, जिससे ऐसा नहीं दीखता कि बुराई का विरोध हो रहा है। दुष्प्रवृत्तियों के उफान को किसी ध्वंसात्मक संघर्ष से बचाने के लिए सत्प्रवृत्तियाँ किसी सीमा तक उनकी उपेक्षा करती हुई यह प्रतीक्षा किया करती हैं, कदाचित यह स्वयं सुधर जाए, किंतु ऐसा नहीं होता तो सत्प्रवृत्तियाँ अपने ढंग से आगे बढ़ती हैं और बुराई को दूर करने का प्रयत्न करती हैं। ध्वंसात्मक होने के कारण दुष्प्रवृत्तियाँ सत्प्रवृत्तियों के विरोध में एक

संघर्ष खड़ा कर देती हैं, जिससे सत्प्रवृत्तियों का अधिक विरोध दृष्टिगोचर होता है। इसके विपरीत सत्प्रवृत्तियों द्वारा संघर्ष के स्थान पर सुधार का प्रयत्न करने के कारण बुराई का विरोध होते नहीं दीखता, जबकि सत्प्रवृत्तियों का विरोध अधिक फलदायक तथा स्थाई होता है। जहाँ तक इच्छाओं का संबंध है, सदिच्छाएँ ही इच्छाओं की सीमा में आती हैं। इसके विपरीत जो असद् इच्छाएँ हैं वे वास्तव में इच्छाएँ न होकर दुष्प्रवृत्तियों का आवेग ही हैं। कोई अच्छा कार्य करने अथवा उदात्त लक्ष्य प्राप्त करने की कामना रखने वाला लाख विरोधों एवं असुविधाओं के होने पर भी अपने ध्येय पर पहुँच ही जाता है।

सदाशयी में एक स्थाई लगन होती है, जिससे वह अपने ध्येय के प्रति निष्ठावान होकर अपनी समग्र शक्तियों को लगाकर प्रयत्न में लगा रहता है। इच्छा एवं प्रयत्न की एकता उसमें एक अलौकिक सहायता स्रोत का उद्‌घाटन कर देती है, जिससे उसके प्रयत्नों में निरंतरता, तीव्रता और अमोघता बढ़ती आती है और वह क्षण-क्षण ध्येय की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होता जाता है।

सदिच्छावान व्यक्ति में आशा, उत्साह, साहस और सक्रियता की कमी नहीं रहती और जिसमें इन सफलतावाहक गुणों का समावेश होगा, असफलता उसके पास आ ही नहीं सकती। असद् इच्छाएँ जहाँ अपने विषैले प्रभाव से मनुष्य की शक्ति का नाश करती है, वहाँ सदिच्छाएँ उनमें नवीन स्फूर्ति, नया उत्साह और अभिनव आशा का संचार किया करती हैं।

एक इच्छा, एक निष्ठा और शक्तियों की एकता मनुष्य को उसके अभीष्ट लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा देती है। इसमें किसी प्रकार के संदेह की गुंजायश नहीं है। आवश्यक है—सघन, तीव्र, एकनिष्ठ, प्रचंड इच्छाशक्ति की।

संकल्प-प्रवाहों की दिशा और गति

घनीभूत इच्छाशक्ति को संकल्प कहते हैं, हमारे स्पष्ट संकल्पों के विशेष आकार होते हैं। उनकी बाह्य रेखा स्पष्ट और तीव्र होती है। वे नाना प्रकार के रंगों सहित नाना प्रकार के रूपों में प्रकट होते हैं। ये सब रूप संकल्पों के प्रेरित होने से, कंपन या थर्राहट से बनते हैं।

प्रकृति में अनेक विचित्रताएँ होने के साथ-साथ कुछ नियमों का सदा आदर और पालन होता है। वह अपने मित्र लोकों में कार्य करने की उन्हीं रीतियों को बराबर दुहराती है अर्थात् प्रकृति के कार्यों में पुनरावृत्ति होती रहती है। इसलिए ध्वनि का आकार यहाँ संकल्प के आकार के सदृश है।

संकल्प चिरस्थाई होते हैं और सूक्ष्म जगत में इनका बड़ा प्रभाव पड़ता है। ये मनुष्य के मन पर अपना अधिकार जमाकर उन्हें आकर्षित करते हैं। एक सशक्त संकल्प वाले मनुष्य के मस्तिष्क से दूसरे मनुष्य के मन में कंपन द्वारा विचारधाराएँ जाती हैं। वे अपना प्रभाव वैसे ही डालती हैं, जैसे आजकल रेडियो बेतार के तार द्वारा समाचार भेजते हैं, जैसे दूर के किसी देश का दृश्य बिना तार द्वारा हम देख सकते हैं। यह आदान-प्रदान गुप्त रीति से होता रहता है। हमें मालूम नहीं पड़ता कि हमारा मन एक प्रकार से बेतार के तार का रेडियो स्टेशन है।

साधारण लोगों का मन विशेष विकसित नहीं रहा, किंतु यदि हम मन की शक्तियों को पहिचानें, उनका उपयोग करना प्रारंभ करें और धीरे-धीरे उन शक्तियों को विकसित करें तो हम संसार

में बड़ा आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। एक साधक अपनी इच्छा के अनुसार संकल्पों को दूरस्थ मनुष्यों तक, जिनके पास वह भेजना चाहे, भेज सकता है। साधक के संकल्प की शक्ति जितनी कम या अधिक होगी, उसी के अनुसार दूसरे मनुष्य पर उसके विचारों का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ेगा। इसकी सफलता मनुष्य की मानसिक शक्ति की दृढ़ता, तीव्रता एवं विश्वास पर निर्भर है।

आपने स्वयं अनुभव किया होगा कि एक मनुष्य के क्रोध की भड़क से दूसरे लोग शीघ्र डर जाते हैं। कारण यह है कि क्रोध का आवेश बहुत ही विशेष आकार का लाल रंग का अत्यंत क्षणिक चमत्कार होता है। चिरस्थाई क्रोध से एक और भी विशेष प्रकार का रूप उत्पन्न होता है जो लाल रंग का और नोंकदार होता है। श्रोताओं पर या जिस पर क्रोध किया जाता है, उस पर उसका वैसा ही प्रभाव होकर कष्ट पहुँचता है, जैसा भाला-बरछी मारने से या काँटा चुभने से होता है।

प्रेम अपने दिव्य गुणानुसार बड़े सुंदर और मनोहर रंग के आकार उत्पन्न करता है। इसमें सब भाँति के अरुण रंगों से लेकर उत्तम और हल्के गुलाबी रंग उत्पन्न होते हैं, वैसे ही जैसे सूर्योदय और अस्त के समय आकाश में बिखरे दीखते हैं।

प्रेम में बड़ी शक्ति है। यह क्रोध से भी अधिक बलवान है। क्रोध जैसे हिंसक के स्थान पर यह भाव रक्षक का काम देता है। बहुत से लोगों के प्रेम-विचार उनके संबंधियों या मित्रों के चारों ओर वायुमंडल में किले के आकार में स्थित होकर उनकी रक्षा करते हैं और उनके समीप के दुष्ट भावों को नष्ट करने के लिए साधक की ओर से अपने सजातीय बलवान संकल्पों की सहायता पाने का अवसर ढूँढ़ते रहते हैं।

जैसे किसी सेठ का नौकर फाटक पर तैनात होकर बगीचे और महल में किसी को प्रविष्ट नहीं होने देता और यदि कोई दुष्ट आए तो वह अपने मालिक या सेठ के बल से अभिमानपूर्वक शक्ति को बढ़ाकर उत्साहपूर्वक अपना कर्त्तव्य करेगा और इस कठिनाई में मालिक से सहायता की आशा रखेगा, उसी प्रकार दृढ़ और पवित्र संकल्प के रूप में भी साधक की इच्छा के अनुसार अंतरीय वेग से अंधवत् कार्य करते रहते हैं। वे दुष्ट संकल्पों को नष्ट करने की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

बलवान ही प्रभावी

शुभ या अशुभ संकल्प एक साथ मनुष्य पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। इन दोनों में जो बलवान होगा, उसी का प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि बलवान संकल्प कमजोर को नष्ट कर देता है।

यदि हमारा मन बलवान है और हम सद्प्रवृत्ति या शुभ स्थाई वृत्ति वाले हैं, हमारे संस्कारों में शुभ प्रभाव प्रबल हैं, तो हम पर किसी बुरे विचार का प्रभाव नहीं पड़ सकता। हम पहाड़ पर एक चट्टान के सदृश अपने मन को दृढ़ और अटल बना लें, जिस पर आँधी, पानी, ठंड, गर्मी का असर बाह्य में भले ही पड़े, परंतु अंतर में नहीं पड़ता। ऐसी दृढ़ मानसिक स्थिति बना लेने पर कोई दुष्ट भाव हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। चाहे हमारे शत्रु हम पर अशुभ और दुष्ट संकल्प प्रेषित करते रहें, पर उनका प्रभाव नहीं के बराबर होगा।

दृढ़ मानसिक स्थिति उस शिला की तरह है, जिस पर पानी की फटकार का कोई भी प्रभाव नहीं होता। इसी प्रकार शत्रु के अशुभ विचार हमारे चारों ओर कुछ समय तक विचरण करते रहें,

या सदैव ही विचरण करते रहें, पर उनका प्रभाव हम पर कुछ नहीं होगा।

मन में किसी प्रकार का अशुभ संकल्प या विचार मत आने दीजिए। दूसरे के अशुभ या विरोधी विचारों को ग्रहण न करने से वे पुनः वापिस भेजने वाले के पास लौट जाते हैं और उसी को हानि पहुँचाते हैं।

शुभ और अशुभ संकल्पों की तुलना देवताओं और राक्षसों से ही जा सकती है। देवता हमारा भला करते हैं और राक्षस हमारी हानि करते हैं। इसलिए जो पुरुष उदार, शुभ और परोपकारी संकल्प वाला है, उसे हम देवता कहकर पुकारते हैं। जो व्यक्ति अशुभ, दुष्ट और कटु संकल्प वाला है, उसे हम राक्षस के बराबर कहते हैं।

कारण यह है कि मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, वैसे भाव ही वह अपने शब्दों और कार्यों द्वारा व्यक्त करता है अर्थात् उसमें दुष्ट संकल्प आने से वह कुवचन बोलता है और कुकर्म करता है, जिससे दूसरों को दुःख होता है।

शुभ संकल्प वाला पुरुष सदा सबसे प्रेम करता है। सदा मन, वचन और कर्म से सबका उपकार करता है। अपनी शुभ संकल्पयुक्त मीठी वाणी से सबको हर्षा देता है। अतः लोग उसे देवता-तुल्य मानते हैं।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया।
पुनन्तु विश्वा भूतानि एवमानः पुनातु मा॥

(ऋग् ६, ६७, २७)

"देवजन मुझे पवित्र करें। मननशील लोग विचार द्वारा मुझे पवित्र करें। सब पदार्थ मुझे सत् संकल्प दें। पवित्रता मेरा आधार हो। भगवान मुझे पवित्र करें।"

संकल्पों की पवित्रता मनुष्य के समग्र जीवन को पवित्र और तृप्त बनाने वाली है।

संकल्प शक्ति का आकर्षण

एक विद्वान का कथन है कि 'बलवान और कार्य के लिए तैयार विचार वाले मनुष्य के बहुत से हाथ होते हैं। अपने लिए उपयोगी हो सके ऐसा नजदीक की प्रत्येक वस्तु के ऊपर वह हाथ रखता है। अपने अनुकूल वस्तुओं को अपनी तरफ खींचने की उसमें आकर्षण शक्ति होती है।'

पर्वत के शिखर पर स्थित एक किला जब फतह न किया जा सका तो एक सैनिक अधिकारी ने कहा कि 'यह किला हम नहीं जीत सकते। यह एक असंभव कार्य है।'

महान सिकंदर ने गर्जकर कहा—'दूर हटो, जो कोशिश करेगा उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है।' यह कहकर उसने एक सैन्यदल का स्वयं संचालन किया और थोड़ी ही देर में शत्रुओं को भगा दिया।

मिश्र पर आक्रमण करते समय जब नैपोलियन की सेना में प्लेग फैला तो वह स्वयं बीमार सिपाहियों के पास जाकर पूछताछ करता। इस प्रकार वह यह प्रकट करता था कि उसके हृदय में डर नहीं है, जिसका स्वभाव भयभीत होने का नहीं है, वह प्लेग जैसी महामारी को भी हरा देता है। ऐसी दृढ़ इच्छाशक्ति शरीर के लिए भी एक बड़ा आश्रय बन जाती है। उस समय मनुष्य ऐसे अद्भुत कार्य कर सकता है जो अन्य लोगों को असंभव जान पड़ते हैं।

पचपन वर्ष की आयु में अँग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक सर वाल्टर स्काट पर बीस लाख रुपए का कर्ज हो गया था। उन्होंने निश्चय किया कि उसे पूरा-पूरा चुकाना चाहिए। इस दृढ़ संकल्प से उनकी

शारीरिक, मानसिक अन्य शक्तियों को बड़ा बल मिला और उनके शरीर के प्रत्येक तंतु से यही ध्वनि निकलने लगी कि 'कर्ज' अवश्य चुकाना चाहिए। वे लिखकर आमदनी करने और कर्ज चुकाने में लग गए और कुछ वर्षों में अपने उद्देश्य को पूरा करके दिखा दिया।

डगलस जेरन्ड को डाक्टरों ने बताया कि 'तुम जीवित नहीं रह सकते।' वह बोला—'क्या मैं निराधार बालकों को ऐसे ही छोड़ जाऊँगा ? नहीं, मैं नहीं मर सकता।' इसके बाद वह बहुत वर्षों तक जीवित रहा। इसी प्रकार 'सेनेका' बहुत समय तक रोग-शय्या पर पड़े रहने के पश्चात उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा कि मेरे मरने की बात को मेरा पिता सहन नहीं कर सकते थे, इस भावना से मैंने जीवित रहने का निश्चय किया और प्राणघातक व्याधि को हटा देने में समर्थ हुआ।

एक लेखक का कथन है कि जगत में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं—'करूँगा', 'नहीं करूँगा' और 'कर नहीं सकता।' पहली प्रकार के लोग सब कामों को पूरा कर डालते हैं, दूसरी प्रकार वालों को सब बातों का उल्टा फल मिलता है और तीसरी प्रकार के सदैव असफल होते हैं। आत्मश्रद्धा में इतना बल है कि कोई कार्य असंभव जान पड़ता है, उसको भी कराने का जो दृढ़ निश्चय कर लेता है तो वह कार्य उसके जीवन में कभी न कभी पूरा हो ही जाता है।

फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक बाल्जाक का पिता उसके लेखन व्यवसाय के विरुद्ध था। उसने उसे समझाया कि साहित्यिक जीवन में मनुष्य या तो भिखारी बन जाता है या राजा हो जाता है। लड़के ने उत्तर दिया कि 'अच्छा, तब मैं राजा ही बनूँगा।' इस पर उसके माँ-बाप ने उसको किसी प्रकार की सहायता न देकर अपने परिश्रम के आधार पर ही छोड़ दिया। वह दस वर्ष तक

संकट और गरीबी के साथ लड़ता रहा और अंत में उसने महान विजय प्राप्त की।

एक बढ़ई किसी मजिस्ट्रेट की मेज को बहुत अधिक सावधानी से तैयार कर रहा था। किसी ने पूछा कि तुम इसे इतने परिश्रम से क्यों बना रहे हो ? बढ़ई ने उत्तर दिया —"जब मैं मजिस्ट्रेट होकर इस मेज पर बैठकर काम करूँगा तो मुझे यह सुंदर लगेगी।" कुछ वर्ष बाद वह वास्तव में मजिस्ट्रेट बनकर उस मेज पर बैठा।

अमरीका के महान जनसेवक गैरीसन ने अन्यायी रूढ़ियों का उच्छेद करने के लिए जब 'लिबरेटर' नाम का सामयिक पत्र प्रकाशित किया तो उसके प्रथम अंक में ही उसने लिखा था— "सच्चे दिल से मैं यह कार्य कर रहा हूँ। मेरे हृदय में किसी प्रकार की शंका नहीं है। मैं कभी किसी प्रकार का बहाना करके एक इंच भी पीछे नहीं हटूँगा और मेरी बात को सब कोई सुनेंगे।" ऐसी अचल निष्ठा से गैरीसन का चरित्र विकसित हुआ था। इतना ही नहीं लिंकन, ग्राण्ट आदि जो बहुसंख्यक महान आत्माएँ प्रतिष्ठा की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुई, वे भी ऐसे दृढ़ निश्चय वाली थीं। इस प्रकार की इच्छाशक्ति होना वास्तव में महत्व की बात है।

दृढ़ संकल्प शक्ति वाले पुरुष मरते हुए भी उस बात से पीछे कदम नहीं हटाते जिसे उन्होंने सच मान लिया है। फ्रांस-इंगलैण्ड के युद्ध के अंतिम दिनों में 'छोटा पिट' इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री बना और उसने फ्रांस को राज्य-क्रांति के विरुद्ध जोरदार अभियान आरंभ किया। उसे बहुत-सी सफलताएँ प्राप्त हुईं, परंतु उधर भी महान नैपोलियन जैसा व्यक्ति उसका मुकाबला कर रहा था जिससे अंत में इंगलैण्ड का प्रधान सेनानायक वीरगति को प्राप्त हुआ। इस घटना से 'पिट' को बड़ा आघात पहुँचा। नैपोलियन की विजय का

समाचार सुनकर उसने योरोप के नक्शे की तरफ उँगली उठाते हुए कहा—"इस नक्शे को जला दो, अब दस वर्ष तक उसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।" यह कहकर वह मूर्छित हो गया। उसे केवल एक बार होश आया तो उसके मुख से धीरे से ये ही शब्द निकले—"हाय, मेरा देश।" वह इतना बुद्धिमान था कि समय की घटनाओं की पूरी शक्ति और महत्व का ठीक अनुमान कर लेता था। उसके कथनानुसार ठीक दस वर्ष बाद वाटरलू के युद्ध में अंग्रेजों ने नैपोलियन को हराकर ब्रिटिश साम्राज्य की पताका पुनः संसार भर में फहरा दी।

विकासवाद के आचार्य डार्विन की इच्छाशक्ति कैसी बलवान थी। वह हमेशा बीमार रहता था, दुःख पर दुःख उसे उठाने पड़ते थे। वह जितना सहन करता था, उसे उसकी स्त्री के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। उसके पुत्र ने लिखा है कि चालीस वर्ष तक एक भी दिन ऐसा नहीं निकला जब कि उसकी तबियत ठीक रही हो, पर इन चालीस वर्षों में वह लगातार इतना काम करता रहा कि अच्छे-अच्छे मन और शरीर वाले भी उतना काम नहीं कर सकते। किसी भी विषय में पूर्णतः संलग्न हो जाने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। वह हार जाने को निर्बलता का चिह्न मानता था और इसलिए पराजय को सहन नहीं कर सकता था। उसकी एक प्रिय कहावत यह थी कि 'आग्रह पूर्वक करने वाला ही कार्य को सिद्ध कर सकता है।' उसके अद्भुत धैर्य और आग्रह का प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि 'प्राकृतिक चयन द्वारा नई जातियों की उत्पत्ति' ग्रंथ की सामग्री इकट्ठी करने में उसे बीस वर्ष का समय लगा और 'मनुष्य का विकास' तीस वर्ष तक निरंतर श्रम करने पर लिखा जा सका।

एक प्राचीन लेखक दृढ़ संकल्प शक्ति के विषय में जो लिख

गया है, वह आज भी सर्वथा सत्य जान पड़ता है कि विश्वास मनुष्यों के ऊपर विजय प्राप्त करता है। वह उनमें ऊपर ही नहीं भीतर भी विजय प्राप्त करता है। एक बलवान हृदय की इच्छा के आगे हजारों काँप जाते हैं। एक छोटा व्यक्ति भी यदि निर्भय होकर निश्चय कर ले तो उससे संघर्ष का स्वरूप ही बदल जाता है और उसे देखकर भागने वाले बड़े-बड़े व्यक्ति पुनः लौटकर जूझने लग जाते हैं।

मनुष्य की असीम संभावनाएँ

मनुष्य की संभावनाएँ असीम हैं, उसके अंतर्गत छिपी हुई क्षमता का पूरी तरह मूल्यांकन किया जा सकना कठिन है। महामानवों के अगणित इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि साधनहीन परिवार में उत्पन्न होना तथा विपरीत परिस्थितियों का घेरा मनुष्य की प्रगति में देर तक बाधक नहीं रह सकता, यदि उसमें आगे बढ़ने की अदम्य आकांक्षा विद्यमान हो।

देखा जाता है कि लोग ऐसी ही दीन-हीन परिस्थितियों में पड़े हुए हेय और गया-गुजरा असफल जीवन जीते रहते हैं। किसी तरह मौत के दिन पूरे करते हैं, न कोई आशा न उमंग, न कोई योजना न दिशा। मानो वे पेट पालने और बच्चे पैदा करने भर के लिए ही जन्मे हों, उसी जंजाल को समेंटने के लिए कुछ करते रहने के लिए विवशता में फँसे पड़े हों।

क्षमता रहते हुए भी इस प्रकार का नीरस जीवन जीने का कारण है—आकांक्षाओं का अवसाद, प्रगति के लिए उत्साह का अभाव और आशाजनक भविष्य चिंतन की उपेक्षा। कुछ योजना ही सामने न हो तो प्रयत्न किस प्रकार संभव होंगे और प्रयत्नों के बिना सफलता का आनंद कैसे मिलेगा ? योजना बनाने के लिए कुछ बनने और कुछ करने की इच्छा होनी चाहिए। यह इच्छा भी मात्र

कल्पना-जल्पना बनकर रह जाए तो निरर्थक है। इच्छा जब उत्कट होती है तब उसे आकांक्षा कहते हैं और आकांक्षा की पूर्ति के लिए अपने सारे मनोयोग और पुरुषार्थ को नियोजित करने का नाम है—संकल्प। जब प्रगति के पथ पर संकल्पपूर्वक बढ़ा जाता है तो प्रतिकूलता अनुकूलता में बदलती है और अंधेरे में प्रकाश उत्पन्न होता है। आरंभ में जो बहुत कठिन लगती थी, वह उतनी ही सरल होती चली जाती है।

श्रुति कहती है—'संकल्प मयोऽयंपुरुष' अर्थात् व्यक्ति संकल्पों की प्रतिमूर्ति है, उसके पुरुषार्थ की सार्थकता संकल्प की उत्कृष्टता पर निर्भर है। जब अभीष्ट प्रयोजन के लिए साहसपूर्वक कमर बाँध ली जाती है और निश्चय कर लिया जाता है कि कठिनाइयों का धैर्य और साहसपूर्वक सामना करते हुए उनके निराकरण के लिए तत्पर रहा जाएगा तो फिर वह निष्ठा भरी मनुष्य की सामर्थ्य देखते ही बनती है। मनुष्य की संकल्पशक्ति संसार का सबसे बड़ा चमत्कार है, उसके आधार पर छोटे स्तर पर खड़ा हुआ व्यक्ति ऊँचे से ऊँचे स्थान तक पहुँच सकता है।

असफलताओं के पीछे एक ही प्रधान कारण रहता है कि जितनी तत्परता और जितने मनोयोगपूर्वक प्रयत्न किया जाना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। असफलता यही उपदेश देने आती है कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अधिक हिम्मत, अधिक बहादुरी और अधिक निष्ठा की जरूरत थी जो पिछली बार पूरी नहीं की जा सकी। अगली बार अधिक सतर्कता और मेहनत के साथ तत्पर होना चाहिए ताकि सफलता की संभावना संदिग्ध रहने का कोई कारण शेष न रह जाए।

अंग्रेजी कहावत है—'परमात्मा उसकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं।' संस्कृत में एक उक्ति है—उद्योगी

पुरुषों को ही लक्ष्मी मिलती है, निस्संदेह, प्रबल पुरुषार्थ पहाड़ों को काटकर अपना रास्ता बना लेता है। प्रयत्न की प्रबलता को देखकर अनेक सहयोगी खड़े हो जाते हैं और साधनों के अभाव की आवश्यकता पूरी करते हैं। यह प्रबल प्रयत्न उन्हीं के द्वारा संभव है जिनकी संकल्प शक्ति उत्कट हो। 'जहाँ चाह वहाँ राह' एक तथ्य है जो मनस्वियों द्वारा अनेक बार आजमाया जा चुका है। रामायण का यह प्रतिपादन अक्षरश: सही है—जिहि कर जिहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु संदेहू। सच्चा स्नेह अर्थात तीव्र आकांक्षा अर्थात् दृढ़तापूर्वक अभीष्ट पथ पर तब तक चलते रहने का अडिग संकल्प, जब कि मंजिल तक पहुँच न जाया जाए।

अगणित संभावनाओं का पुंज मनुष्य इसीलिए पिछड़ा पड़ा रहता है कि उसकी संकल्प शक्ति क्षीण होती है। जैसी-तैसी परिस्थिति में पड़े रहने में ही जिसे संतोष हो, जो उच्च स्थिति प्राप्त करने और आगे बढ़ने के लिए आतुर नहीं हैं, उसे प्रगति पथ पर अग्रसर करने वाली परिस्थितियाँ अनायास नहीं मिल सकती। थाली में परोसी रोटी भी जब तक ग्रास तोड़ने और चबाने का पुरुषार्थ न किया जाए पेट में अपने आप नहीं पहुँचती। पुरुषार्थ के प्रतिफल ही समृद्धि और सफलता के रूप में सामने आते रहते हैं, पर यह पुरुषार्थ अनायास ही नहीं हो जाता। परिश्रम करने में जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसे सहन करने के लिए शरीर और मन सहज ही तैयार नहीं हो जाते, इसके लिए संकल्प का चाबुक चाहिए। इसके बिना आलस्य और प्रमाद का किसी प्रकार दिन गुजारने वाला ढर्रा ही अभ्यस्त बना रहता है, उसे बदलने के लिए जिस उथल-पुथल की आवश्यकता पड़ती है, उसे सुदृढ़ संकल्प ही पूरा कर सकता है।

ऐसी घटनाओं से इतिहास के अगणित पृष्ठ भरे पड़े हैं, जिनमें योग्यता, साधन एवं परिस्थिति के अनुकूल न होने पर भी

हिम्मत के धनी लोगों ने अपनी इच्छाशक्ति का सहारा लेकर किसी बड़े प्रयोजन के लिए कदम बढ़ाया और उपहासों और अवरोधों के बावजूद जब वे अभीष्ट मार्ग पर चलते ही रहे तो आरंभ में कठिन ही नहीं असंभव लगने वाला लक्ष्य सरल होता चला गया।

जो अवरोधों की आशंका को बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं और केवल कठिनाइयों का ही लेखा-जोखा लेते रहते हैं, उनकी सारी शक्ति उस उधेड़बुन में ही नष्ट हो जाती है। निराशाजनक चित्र खींचने में ही उनकी सारी कल्पना निरस्त हो जाती है। इतने कम साधनों में इतनी प्रगति कैसे हो सकती है ? इन परिस्थितियों में आगे बढ़ सकना कैसे संभव है ? ऐसा लेखा-जोखा बताते रहने वालों को ये विदित ही नहीं है कि मनुष्य के अदम्य साहस और उत्कट संकल्प में कितना बल है। ऐसे लोग यदि महामानवों के जीवनक्रम पढ़ें तो उन्हें पता चलेगा कि मात्र अवरोध ही सब कुछ नहीं, उनके कारण प्रगति अवरुद्ध नहीं पड़ती रहती। मनुष्य की इच्छाशक्ति की कमी ही वह प्रमुख कठिनाई है, जिसके कारण प्रमुख क्षमताएँ, अद्‌भुत संभावनाएँ उभर कर आगे नहीं आने पातीं। यदि अदम्य साहस का परिचय दिया जाए तो उन साधनों का इकट्‌ठा होना आरंभ हो जाता है, जिनकी सफलता के लिए आवश्यकता थी। सफलताओं के इतिहास में संकल्प शक्ति का सबसे बड़ा योगदान है। वही असमर्थों को समर्थ बना सकती है और असफलता की आशंका को सफलता की संभावना में परिवर्तित कर सकती है।

अपने दोष-दुर्गुणों से निबटने में संकल्प ही प्रधान रूप में सहायक होता है। यह क्षमता जिसने उत्पन्न कर ली, वह अपने उन दोषों पर विजय प्राप्त कर सकता है जो आगे बढ़ने वालों के मार्ग को सबसे अधिक रोकते हैं। यह विचार सही नहीं है कि साधन

अथवा सहयोग के अभाव में काम रुका पड़ा रहता है। वास्तव में साधन और सहयोग अनायास ही नहीं टपकते, उन्हें उपलब्ध करने के लिए आकर्षक व्यक्तित्व चाहिए। आकर्षक व्यक्तित्व में यह विशेषता होती है कि वह साथी, समर्थक और सहायकों को कहीं से भी खींचकर अपने पास इकट्ठे कर लेता है। यह आकर्षक व्यक्तित्व उत्पन्न करने के लिए अपने आलस्य, प्रमाद, अनुत्साह, कटु व्यवहार, निराशा, भय, अधीरता आदि दुर्गुणों को दूर करना पड़ता है। इसके बिना न व्यक्तित्व में चमक आती है और न प्रामाणिकता प्रकट होती है।

मनुष्य की सबसे बड़ी क्षमता उसकी संकल्प शक्ति है। कल्पना और इच्छा मात्र से काम नहीं चलेगा। शेखचिल्ली की तरह दिवास्वप्न देखते रहने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, हमें संकल्पवान होना चाहिए। सोच-समझकर लक्ष्य निर्धारित करना और फिर मनोयोग एवं पुरुषार्थ एकत्रितकर इस प्रयोजन में लगा देना, यही संकल्प की प्रखरता का चिह्न है। सफलता उन्हें वरण करती है जो धैर्यवान हैं, देर तक अभीष्ट की पूर्ति का इंतजार कर सकते हैं और तब तक निर्धारित पथ पर चलते रहने की हिम्मत रखते हैं, जब तक कि मंजिल तक पहुँच न जाया जाए। विजय श्री ऐसे ही धैर्यवान, पुरुषार्थी और संकल्प शक्ति संपन्न वीर पुरुषों की प्रतीक्षा करती है, सफलता का श्रेय उन्हें ही मिलता है।

जीवन-निर्माण के प्रत्येक क्षेत्र में संकल्प शक्ति को विशिष्ट स्थान मिला है। यों प्रत्येक इच्छा एक तरह की संकल्प ही होती है, किंतु सब इच्छाएँ संकल्प की सीमा का स्पर्श नहीं कर पातीं। उनमें पूर्ति का बल नहीं होता, अतः वे निर्जीव मानी जाती हैं, किंतु वे ही इच्छाएँ बुद्धि, विचार और दृढ़ भावना द्वारा जब परिष्कृत हो जाती हैं तो संकल्प बन जाती हैं। ध्येय सिद्धि के लिए इच्छा की अपेक्षा

संकल्प में अधिक शक्ति होती है। संकल्प उस दुर्ग के समान है जो भयंकर प्रलोभन, दुर्बल एवं डावाँडोल परिस्थितियों से भी रक्षा करता है और सफलता के द्वार तक पहुँचने में मदद करता है। शास्त्रकार ने "संकल्प मूलः कामः" अर्थात् कामना पूर्ति का मूल संकल्प बताया है। इसमें संदेह नहीं है। प्रतिज्ञा, नियमाचरण तथा धार्मिक अनुष्ठानों से भी वृहत्तर शक्ति संकल्प में होती है।

महान विचारक एमसेन ने लिखा है—"इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य की संकल्प शक्ति के सम्मुख देव, दनुज सभी पराजित होते रहे हैं।"

उत्कृष्ट या निकृष्ट जीवन यथार्थतः मनुष्य के विचारों पर निर्भर है। कर्म हमारे विचारों के रूप हैं, जिस बात की मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, वह अपनी पसंद या दृढ़ इच्छा के कारण गहरी नींव पकड़ लेती है, उसी के अनुसार बाह्य जीवन का निर्माण होने लगता है।

विचार यों अव्यक्त मन से भी प्रस्फुटित होते हैं, किंतु वे प्रभावशाली नहीं होते, अतः संकल्प भी एक तरह की विचार उत्पादक शक्ति है। इस तरह के विचार क्रमिक एवं योजनाबद्ध होते हैं, अव्यक्त विचारों की अपेक्षा उनकी शक्ति भी अधिक प्रखर होती है। इसलिए जो काम विशेष संकल्प के साथ किए जाते हैं, वे प्रायः असफल नहीं होते।

यहाँ संकल्प शक्ति के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। हवा के आघात से जिस प्रकार जल में तरंगें उठा करती हैं और एक कोने से दूसरे कोने तक दौरा करती हैं, जो लहरें अधिक शक्तिशाली होती हैं, वे अधिक वेग और कंपन के साथ किनारों से थपेड़े मारती हैं, उसी तरह मन में भी शुभ-अशुभ विचारों के कंपन या तरंग उठा करती हैं, जो सूक्ष्म आकाश में सुदूर तक प्रसारित

होती रहती हैं। प्रत्येक विचार का एक निश्चित स्वरूप होता है जो दूसरे सजातीय प्रवाहों के साथ मिलकर और भी शक्तिशाली बनता रहता है। इस तरह के अनेक संकल्प-विकल्प इस सूक्ष्म जगत में विद्यमान हैं, पर उनका लाभ मनुष्य को तब मिल पाता है जब वह विशेष मनोयोगपूर्वक किसी एक इच्छा की पूर्ति की ओर प्रवृत्त होता है। इस तरह का मस्तिष्क उन सजातीय विचार-तरंगों को सूक्ष्म आकाश से उसी तरह खींचता है जैसे भूखा अजगर साँस की तेजी के साथ छोटे-छोटे अनेक जीव-जंतु, कीट-पतंगों को खींच लेता है। सजातीय तत्वों की एक अदृश्य शक्ति काम करने लगती है और सफलता के अनेक मार्ग अपने आप सूझने लगते हैं। ऐसा लगता है कोई दैवी-शक्ति आपका साथ दे रही है, किंतु वह शक्ति संकल्प की ही होती है, जो मस्तिष्क में अनेक पुरुषों की वैसी ही कल्पनाएँ तथा सूझ-बूझ ढूँढ़-ढूँढ़कर लाती रहती है और विचारवान व्यक्ति उनमें से अपनी परिस्थितियों के अनुरूप साधनों को ग्रहण करता हुआ चला जाता है। इससे सफलता प्राप्त करने में कुछ अधिक देर नहीं लगती।

इस संसार में भलाई अधिक है। अतः भले विचारों के सूक्ष्म प्रवाह भी सूक्ष्म आकाश में अधिक विद्यमान हैं, अतः अच्छे काम को करने में धन की आवश्यकता उतनी नहीं, जितने शुद्ध हृदय और सात्विक संकल्प की होती है। जब संकल्प दृढ़ हो जाता है और अध्यवसाय में भी कुछ शिथिलता नहीं रहती तो उद्देश्य की सफलता भी निश्चित हो जाती है। निश्चयात्मक विचारों का कार्य-सिद्धि में बड़ा महत्व है।

एक बार खूब अच्छी तरह से विचार करने के बाद कोई संकल्प कर ले और फिर उसे छोड़े नहीं तो कैसा ही कठिन कार्य हो, उसमें भी सफलता की बहुत कुछ संभावनाएँ बढ़ जाती हैं, पर

इसके लिए उचित उद्योग तथा साध्य की तत्परता होना भी आवश्यक है, इसके बिना संकल्प में वह सामर्थ्य नहीं आ पाती जो सफलता के लिए अभीष्ट होती है। जिस बात का संकल्प लिया जाए, उस पर उसी क्षण से अमल भी होना चाहिए। विचार और क्रिया दोनों के सम्मिश्रण से ही सफलता मिलती है।

मान लीजिए आपने संकल्प लिया है कि इस वर्ष अच्छे नंबरों से परीक्षा पास करेंगे, तो इसके लिए आपको प्रातःकाल उठना ही पड़ेगा, पढ़ाई भी करनी ही पड़ेगी। इसमें ढील देने से आपकी कामना अधूरी ही रहेगी। दृढ़ संकल्प में मनुष्य की मति स्थिर और शरीर क्रियाशील बना रहना चाहिए। यदि हमारा मन बलवान है और कार्य करने की लगन है तो कोई अशुभ या अवरोध सफलता के रास्ते में अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। अपने मन को तूफानी आघातों से भीषण गर्मी-बरसात-ओलों के बीच अडिग अटूट रहने वाली चट्टान की तरह बना लें, तो परिस्थितियाँ और सांसारिक अड़चनें आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेंगी।

इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री सर विन्स्टन चर्चिल ने अपनी डायरी में लिखा है—'मेरे पुनः स्वस्थ हो जाने का कारण कोई नई दवा नहीं थी। दवा का काम तो मेरी दृढ़ संकल्प शक्ति ने किया। मुझे दृढ़ विश्वास था कि परमात्मा ने अभी मेरे लिए कुछ काम शेष रखा है और उसे मुझे पूरा करना ही है।' कहते हैं यह बात उन्होंने अपनी पक्षाघात की बीमारी के समय सन् १९४५ में लिखी थी, तब उनके प्रायः सभी मित्रों ने यह विश्वास कर लिया था कि उनके दाहिने हाथ का पक्षाघात ठीक नहीं होगा, किंतु चर्चिल की संकल्प-शक्ति के आगे पक्षाघात को झुकना ही पड़ा।

साहस और निश्चयात्मक विश्वास संकल्प के दो पहलू हैं, इन्हीं से मनुष्य की जीत होती है। साहस निरंतर आगे बढ़ते

रहने की प्रेरणा देता है। इसमें कर्म की गति बनी रहती है। निश्चयात्मक विचार डाँवाडोल परिस्थितियों में भी संतुलन बनाए रहते हैं, इस तरह से मनुष्य अविचल भाव से अपने इच्छित कर्म पर लगा रहता है।

स्वास्थ्य की तरह शिक्षा, उद्योग, साधना आदि अनेक क्षेत्रों में संकल्प शक्ति से द्रुतगामी सफलता अर्जित की जा सकती है, किंतु यह न भूलना चाहिए कि कभी-कभी परिस्थितियों की गंभीरता का संकल्प के साथ संघर्ष हो जाता है। अपने साधनों को दृष्टि में रखकर भी जो संकल्प लिए जाते हैं, उनमें भी आकस्मिक रुकावटें आ सकती हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य की सारी विचार शक्ति लड़खड़ा जाने का खतरा रहता है। ऐसे अवसर जब कभी आएँ, उस समय दैवी-संकल्प को महत्तर समझकर धैर्य रखना ही लाभदायक होता है। घबराहट की-सी बात क्यों ? आगे के लिए फिर कोई नया मार्ग तलाश कर लेना चाहिए। विवशता या विभ्रम से बचने के लिए यह पहले अनुमान कर लेना ही ठीक है कि आप जो कार्य करने जा रहे हैं या जिस बात को आप उठा रहे हैं, उसके पूरा करने की कितनी शक्ति आप में है। यदि संकल्प करते रहे, किंतु तदनुसार कार्य न हो तो आत्मशक्ति का ह्रास हो जाता है। जब कोई संकल्प लिया जाए तो जहाँ तक बन पड़े उसे पूरा ही करके छोड़ना चाहिए। हाँ, परिस्थितियाँ इसे असंभव बना दें, तो भिन्न बात है।

अतः प्रथमतः संकल्पों को अपनी यथार्थ स्थिति और उपलब्ध साधनों को दृष्टि में रखकर ही लेना चाहिए। दूसरे परिस्थितियों के कारण उनकी पूर्ति संभव नहीं हो, तो उस पर अड़ने की बजाए, परिस्थितियों के अनुरूप संकल्प एवं कर्म की नई दिशा—नीति निर्धारित करना चाहिए।

संकल्प की दृढ़ता–विचारों की गहराई से

कर्मयोग के लिए अपने विचारतंत्र को सही करना, असंभव और असम्बद्ध कल्पनाओं में उड़ते–फिरने की अस्तव्यस्तता को निरस्त करना आवश्यक है। भविष्य के सुनहरे सपने देखते रहने की अपेक्षा यही उचित है कि आज की समस्याओं को आज के साधनों से हल करने का तालमेल बिठाया जाए। कल जब अधिक अच्छी परिस्थितियाँ सामने होंगी तो कल उससे आगे की बात सोची जा सकती है। भूतकाल चला गया, वह लौट नहीं सकता। इसलिए 'बीती ताहि विसार दे' की उक्ति को सही मानकर गढ़े मुर्दे उखाड़ने की बात भुला देने में ही बुद्धिमत्ता है। भूतकाल की समीक्षाओं का लाभ इतना ही है कि पिछले अनुभवों से लाभ उठा लिया जाए। बीती घटनाओं की बात सोच कर रंज करने और पछताने से वर्तमान भी नष्ट होता है। सबसे महत्वपूर्ण समय वर्तमान ही है। भविष्य की कल्पनाओं में उड़ना भी भूत चिंतन की तरह ही निरर्थक है। कहते हैं बुड्ढे भूतकाल की बातें सोचते और बच्चे भविष्य की कल्पनाओं में उलझे रहते हैं। प्रौढ़ावस्था की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वर्तमान को देखा समझा जाए और प्रस्तुत अवसर का अधिक सदुपयोग करने में तत्पर हुआ जाए। हमारा चिंतन यथार्थवादिता पर निर्भर होना चाहिए और भावी प्रगति के लिए आज जो किया जाना संभव है, उसी पर ध्यान केंद्रित रहना चाहिए।

आवेशों से जितना बचना संभव हो उतना बचना चाहिए व मन को अव्यवस्थित भाग-दौड़ करने से रोकना चाहिए। मन की अव्यवस्थित भाग-दौड़ का तात्पर्य एक ही है कि उसे कोई महत्वपूर्ण काम सुनिश्चित रूप में सौंपा ही नहीं गया, यदि सौंपा जाए तो वह अपनी अस्तव्यस्तता छोड़कर निर्धारित दिशा में कार्य संलग्न बना रहेगा। वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार, शिल्पी, व्यवसायी, कृषक आदि अपने को नियत निर्धारित काम में लगाए रहने का अभ्यास करते हैं। फलतः उनका चिंतन क्रम अस्तव्यस्तता में भ्रमण नहीं करता और बिना कठिनाई अनुभव किए अपने निर्धारित क्रम में जुटा रहता है।

आरंभ में अनगढ़ मन को एकाग्र करना थोड़ा कठिन पड़ता है, पर यह कठिनाई तो हर नए काम में आती है। हल में चलने के लिए नया बछड़ा सहज ही कहाँ रजामंद हो जाता है। नए घोड़े ताँगे में जुड़ते समय कितनी गड़बड़ फैलाते हैं ? यदि मालिक लोग इस असहमति से निराश होकर अपना प्रयास छोड़ दें तो फिर उनका पालना और घोड़े खरीदना ही व्यर्थ है। तब वे हल जोतने और ताँगा चलाने के लाभ से वंचित ही रहेंगे। हिम्मत के साथ देर तक डाट-पुचकार कर लगे ही रहने पर सरकस के जानवर कैसे-कैसे करतब दिखाने लगते हैं। फिर कोई कारण नहीं कि मन को निर्दिष्ट दिशा में ही अपनी चिंतन प्रक्रिया पर केंद्रित किए रहने के लिए अभ्यस्त न किया जा सके।

उथले विचार ऊपरी सतह पर घूमते रहते हैं और गोता मारकर कीमती मोती पाने में सफल नहीं होते। किसी भी विषय पर जितनी गंभीरतापूर्वक उसके पक्ष-प्रतिपक्ष का मंथन करते हुए निष्कर्ष निकाला जाएगा, उतनी ही वस्तुस्थिति स्पष्ट रूप से सामने आएगी। एकांगी एवं एक पक्षीय विचार भावुकता कहलाते हैं। होना यह

चाहिए कि पक्ष और विपक्ष के दोनों विचार काम करें, सरलता और कठिनाई की दोनों तस्वीरें सामने रखी जाएँ और सोचा जाए कि अधिक अनुकूलता उत्पन्न करने के लिए क्या-क्या करना होगा और उसके लिए क्या साधन जुटाने होंगे ? मात्र कठिनाइयों की बात सोचकर किसी प्रयास के लिए साहस न करना जितना अबुद्धिमत्तापूर्ण है, उतना ही यह उपहास्पद भी है कि अभीष्ट मनोरथ को चुटकी बजाते सफल होने की बालबुद्धि अपनाई जाए। ऐसे उतावले लोग आए दिन असफलता का मुँह देखते, दुर्भाग्य का रोना रोते पाए जाते हैं। हर छोटा-बड़ा काम आवश्यक मनोयोग, परिश्रम, साधन और समय की अपेक्षा रखता है। उन्हें जुटाने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ता है। जिनमें इसके लिए धैर्य, साहस और संकल्प होगा, वे ही कुछ कर सकने और पा सकने में सफल होंगे। योग्यता का अभाव और साधनों की कमी पूरी करने के लिए घनघोर प्रयास करने को ही सफलता की पदयात्रा कहते हैं। उछलकर क्षणमात्र में आकाश चूमने के आतुर लोगों ने कभी कुछ कहने लायक सफलता पाई हो ऐसा देखने-सुनने में नहीं आया, क्योंकि प्रखर संकल्प को ही सफलता की जननी कहा गया है। यह इच्छाशक्ति का ही सघन रूप है। इच्छा-आकांक्षा ही घनीभूत होकर व्यक्ति को कर्म मार्ग पर अग्रसर करती है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। किसी भाप से चलने वाली रेलगाड़ी को पटरी पर दौड़ाने के लिए भाप आवश्यक है, यद्यपि उसके साथ चालक की इच्छा, आकांक्षा और नियंत्रण दक्षता भी आवश्यक है। चालक की कुशलता और दक्षता को इच्छाशक्ति का प्रतिरूप कहें तो अकेले रेलगाड़ी और चालक होना ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए वाष्प से उत्पन्न की गई शक्ति

जिसके कारण कि रेल के पहियों में गति आनी है, का होना भी अति आवश्यक है।

यह सच है कि संकल्प के अभाव में शक्ति का कोई महत्व और मूल्य नहीं है, उसी प्रकार यह भी सच है कि शक्ति के अभाव में संकल्प भी पूरे नहीं होते। केवल संकल्प करते रहने वाला निरुद्यमी व्यक्ति उस आलसी व्यक्ति की तरह कहा जाएगा जो अपने पास गिरे हुए आम को मुँह में रखने की कोशिश नहीं करता और इच्छा मात्र से आम का स्वाद ले लेने की आकांक्षा करता है।

संकल्प के साथ शक्ति को संयुक्त करना एक कला है और इसमें बहुत थोड़े लोग ही पारंगत हो पाते हैं। इसका कारण है परिश्रम और प्रयासों के प्रति निरपेक्ष बने रहना। बहुत से लोग मानवशास्त्र के सिद्धांत पढ़-पढ़कर यही विश्वास करने लगते हैं कि हम जो कुछ भी चाहते हैं, वह हार्दिक आकांक्षा होने पर हमें स्वत: ही प्राप्त हो जाएगा। जब कि सचाई यह है कि केवल वे ही इच्छाएँ पूरी होती हैं जिनके साथ सशक्त प्रयास भी जुड़े हों। यहाँ शक्ति का अर्थ उद्‌देश्य के प्रति दृढ़ निष्ठा, उसे पूरा करने के लिए आवश्यक बाधाओं से संघर्ष का मनोबल और साहस है। इनके बिना संकल्प कभी भी शक्ति नहीं बन पाते। उसके अनुसार मन के लड्डू भले ही तोड़े जाते रहें।

शक्ति, जो संकल्प को परिणामदायक बनाती है, उसे अर्जित करना एक साधना है। अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए आवश्यक उत्साह ही उस साधना का नाम है। कभी न ठंडा पड़ने वाला उत्साह ही हमें लक्ष्य तक पहुँचाता है। पानी को भाप बनाने के लिए २१२ डिग्री फारेनहाइट तक गर्म करना आवश्यक है। २११.९ डिग्री तक पानी भाप नहीं बनेगा। उसका एक निर्धारित

क्वथनांक है और उस क्वथनांक पर पहुँचकर ही पानी भाप बनता है। उसी प्रकार उत्साह का भी एक उच्चतम आवश्यक स्तर है और उस स्तर तक पहुँचने के पूर्व असफल होने की संभावना रहती है।

उत्साह में उस स्तर की अभिवृद्धि के लिए क्या किया जाना चाहिए और इस स्तर की अभिवृद्धि का क्या मापदंड है ? लक्ष्य के प्रति ईमानदारी, भविष्य के प्रति आशापूर्ण दृष्टिकोण और मार्ग में आने वाली सभी कठिनाइयों से जूझने का साहस। संक्षेप में उद्यम, आशा और साहस, ये तीन ही वे प्राथमिक कसौटियाँ हैं, जिनके आधार पर अपने उत्साह को परखा जा सकता है और संकल्प के साथ शक्ति को संयुक्त किया जा सकता है।

निष्कर्षत: सफलता की प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प के साथ उद्यम, आशा और साहस का होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है, अन्यथा खयाली पुलाव के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

उपयुक्त और उच्च स्तर के साधन जुटाने के लिए लोग इंतजार करते रहते हैं और महत्वपूर्ण कार्य आरंभ करने के लिए सोचते रहते हैं कि जब आवश्यक साधन जुट जाएँगे, तब उसे प्रारंभ करेंगे। समुचित साधन जुटने की प्रतीक्षा में बैठे रहना, इस संभावना का ही आभास देता है कि शायद वह कार्य कभी भी आरंभ न हो सकेगा। खयाल करते रहने के स्थान पर आवश्यकता उस कार्य में जुट पड़ने की रहती है।

स्वल्प साधनों से भी प्रबल साहस के सहारे, बड़े-बड़े महत्वपूर्ण काम किए जा सकते हैं, इसके अनेकानेक प्रमाण, उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर भरे पड़े हैं।

उन दिनों हवाई जहाज नहीं चले थे। हाइड्रोजन गैस के गुब्बारे उड़ने लगे थे, उन्हीं में बैठकर लोग आकाश यात्रा का आनंद लेने

लगे थे। फ्रेंच वैज्ञानिक प्रो० चार्ल्स ने ऐसा पहला गुब्बारा सन् १७८३ में उड़ाया था। इसके बाद उसकी क्षमता और आकृति में क्रमशः और सुधार होता गया। इस उपलब्धि से प्रभावित होकर कुछ साहसी लोगों ने यह व्यवस्था की कि इन्हीं गुब्बारों में बैठकर उत्तरी ध्रुव की यात्रा की जाए और वहाँ की समुद्रीय, भूगर्भीय तथा आकाशीय परिस्थितियों के विवरण से सर्वसाधारण को अवगत कराया जाए। आकाश यात्रा के लिए ये गुब्बारे जिनका विकसित रूप 'जैपलीन था, काम चलाऊ मान लिया गया। बहुत प्रयत्न करके अमरीकी सरकार से एक पुरानी-धुरानी पनडुब्बी माँग ली गई। उसका नया नामकरण किया गया 'नौटिलस'। इन साधनों के सहारे ध्रुव प्रदेश की अति कठिन यात्रा पूरी कर सकना उन दिनों एक प्रकार से असंभव और जान जोखिम में डालकर उठाया जाने वाला खतरा ही कहा गया था। तो भी कुछ दुस्साहसी लोगों ने उसकी योजना बना ही डाली और उसे पूरी करके ही रहे।

उस योजना के संचालक थे जर्मनी के एक डाक्टर उल्सटीन। उनने सारे साधन जुटाए। एक उड़न गुब्बारा जैपलीन इस कार्य के लिए विशेष रूप से बनाया गया, उसमें कुल ५६ आदमी सवार थे। ४० चलाने वाले और १६ अनुसंधान कार्यकर्त्ता। गुब्बारा एक फुटबाल के मैदान के बराबर ऊँचा एक गिरजाघर जितना था। उसमें खटोले जैसे लटके होते थे, यात्री उन्हीं पर बैठते थे। बैठने के कमरे को एक बड़ी गुफा कहा जा सकता था, उसकी छत पर गैस के गुब्बारे टंगे होते थे। गैस को बनाने तथा नियंत्रण रखने तथा दिशा देने के लिए उसमें पाँच यंत्र लगे थे। रस्सों और छड़ों के सहारे पहले-पहले उसे झटका देकर आकाश में उड़ाया जाता था, पीछे तो वह अपने आप ही मंथर गति से उड़ने लगता था।

लेक कान्सटैस से उड़कर वह गुब्बारा जर्मनी, स्वीडन, ऐस्थीनिया, फिनलैण्ड और रूस की सीमाएँ पार करते हुए ध्रुव प्रदेश पर पहुँचा। ल्फोरा-अंतरिक्ष से लेकर सुविस्तृत ध्रुवीय क्षेत्र पर उसने उड़ान भरी और चित्र-विचित्र विवरण देखे तथा उनके फोटो लिए। लगभग एक सप्ताह यह गुब्बारा आसमान में उड़ा और पनडुब्बी को उससे भी अधिक समय लगाना पड़ा।

जब यात्री लोग वापिस लौटे और उन्होंने वहाँ की परिस्थितियों के विचित्र विवरण से जनसाधारण को अवगत कराया तो सुनने वालों को सहसा विश्वास न हुआ कि इतनी रोमांचकारी परिस्थितियों में इतने स्वल्प साधनों से इतनी दुस्साहस पूर्ण यात्रा की जा सकती है।

असामान्य को सामान्य और असंभव को संभव बनाने वाले प्रबल पराक्रम का महत्व जिन्होंने जाना है, उन्हें यह विदित है कि मानवी श्रम, मनोयोग, साहस और संकल्प का समन्वय जहाँ भी हो जाए, वहाँ कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता नहीं मन:स्थिति की प्रतिकूलता प्रगति पथ का अवरोध बनती है। अतः आवश्यकता मन:स्थिति को अनुकूल बनाने की है।

मन को रोकें नहीं संकल्पवान बनाएँ

मनोविज्ञानी फ्राइट अपनी पत्नी और बच्चे समेत एक उद्यान में सैर करने गए। बैठे गप-शप कर रहे थे। इतने में एक छोटा चार वर्ष का बच्चा गायब हो गया, निगाह दौड़ाई तो कहीं भी दिखाई नहीं दिया। पत्नी बहुत घबराने लगी और ढूँढ़ने के लिए आतुरता प्रकट करने लगी।

फ्राइट ने सांत्वना देते हुए कहा—घबराने की कोई बात

नहीं है। पास के उद्यान में वह झूले पर झूल रहा होगा, अभी चलते हैं उसे पा लेना। सब लोग चले और देखा कि सचमुच बच्चा पास वाले उद्यान में झूले पर झूल रहा है। फ्राइट की पत्नी को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—आपको कैसे मालूम हो गया था कि बच्चा यहाँ इस झूले पर झूल रहा है? उन्होंने उत्तर दिया—मैं सुनता चला आ रहा था। रास्ते में जब वह पार्क पड़ा तब बच्चे ने उस पर झूलने का आग्रह किया था। तुमने मना कर दिया था। बच्चे की उत्सुकता बढ़ी होगी। उसने ज्ञान और अनुभव बढ़ाने की अंत:प्रेरणा से वहाँ जाना और वस्तुस्थिति को देखना आवश्यक समझा होगा। मना करने से उसके रहस्य जानने की उत्कट इच्छा ने भी इसके लिए उत्साहित किया होगा और वह आँख बचाकर यहाँ चला आया होगा। इस वस्तुस्थिति को मैं समझता था। सो ही मैंने निश्चित रूप से यह कह दिया कि वह पड़ोस के बगीचे में झूले पर होगा।

फ्राइट ने पत्नी से इस संदर्भ में इतना और कहा कि मन का बिलकुल यही हाल है। जिसे न करने के लिए कहा जाता है, जिधर से रोका जाता है, उधर ही उसकी प्रवृत्ति और अधिक होती है। रहस्य जानने, ज्ञान बढ़ाने और अनुभव करने की इच्छा के लिए वह ऐसे प्रसंग के संपर्क में अधिक आतुरतापूर्वक आने का प्रयत्न करता है, जहाँ से उसे रोका जाए।

मन को रोकना काफी नहीं। उसे ऐसी दिशा देनी चाहिए, जिसमें अधिकाधिक रस मिले और रुचि जुड़े। जहाँ अधिक आकर्षण होगा, मन वहीं जाएगा। कुमार्ग पर से मन को रोकने का बार-बार निषेध करना एकांगी है। उसकी दिशा परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि मन के लिए कोई अधिक आकर्षक क्षेत्र काम करने और विचरण करने के लिए उपलब्ध हो।

एक साधक साधना कर रहे थे। मन काबू में न आता था, वह निर्धारित लक्ष्य पर न रुककर अन्न माँगता था। इस कठिनाई का समाधान करने के लिए वे अपने गुरु के पास पहुँचे। गुरु ने उस समय तो कुछ उत्तर न दिया, पर अगले दिन एक नई साधना बताने के लिए उसे बुलाया।

साधक पहुँचा तो उन्होंने कहा—आज बहुत ही शुभ मुहूर्त है। ऐसा मंत्र बताता हूँ, जो आज ही सिद्ध हो जाएगा और मनोवांछित फल देगा। साधक को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने वह छोटा मंत्र भली प्रकार याद कर लिया तथा सरल-सा विधि-विधान भली प्रकार समझ लिया। चलने लगा तो गुरु ने उसे रोका और कहा—एक छोटा-सा प्रतिबंध और है जिसे इस साधना के समय पालन करना आवश्यक है। साधक ने उत्सुकतापूर्वक उसे भी पूछा। उसने कहा—जप के समय बंदर का ध्यान नहीं आना चाहिए। प्रतिबंध जरा-सा था, उसे पालन करने में क्या कठिनाई हो सकती थी। साधक प्रसन्न होता हुआ चला गया।

जब वह जप करने बैठा तो प्रतिबंधित बंदर का ध्यान ही मस्तिष्क पर हावी होने लगा। उसने जितना ही मन को रोका, उतना ही अधिक तीव्रता के साथ बंदर का ध्यान आया। पूरा दिन इसी खींचा-तानी में चला गया। साधन न हो सका। पूरे समय बंदर ही मन पर सवार रहा। सन्ध्या होने पर साधक दुःखी होता हुआ गुरु के पास आया और अपनी असफलता बताई।

गुरु मुस्कराए और उनने कहा—पिछले दिन की तुम्हारी शंका का यही उत्तर है। मन के निरोध में यही कठिनाई है कि जिस काम से उसे रोका जाता है, उसी के लिए आतुर होता है। ज्ञान और अनुभव बढ़ाने की उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति इसके लिए विवश करती है। इसलिए मन को साधने में प्रतिबंध खड़े करने की

अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त रहता है कि सम्मुख प्रस्तुत कार्य में अधिक आकर्षण उत्पन्न किया जाए। बंधन ढीले रखे जाएँ और यदि बहुत अनुचित न हो तो तथाकथित बंधनों को कभी कुछ ढीला करके मन को यह देख समझ लेने दिया जाए कि जिसके लिए वह आतुर था, वह कितना निस्सार और निरर्थक क्षेत्र है। अनुभव के बाद निकला हुआ निष्कर्ष अधिक स्वस्थ और परिपक्व होता है।

वस्तु प्राप्त न होने पर अभाव की स्थिति में किया हुआ त्याग कच्चा है। उपयोग और उपभोग के बाद जो वस्तु छोड़ी जाती है, उसकी निरर्थकता के बारे में मन निश्चिंत रहता है। जहर खाने, आग छूने जैसे अनुभव करना तो बहुत महँगा पड़ता है, पर जहाँ तक इंद्रियों की अनुभूति का संबंध है, उन्हें उचित सीमा में छूट देकर यह अनुभव कर लेने देना चाहिए कि वह रसलिप्सा निरर्थक भी है और हानिकारक भी।

एक साधु ने एक दिन एक विचित्र आचरण किया, इसके उस कौतुक को देखने के लिए बहुत लोग इकट्‌ठे हो गए। उनने एक बड़ा बर्तन भर के कढ़ी पकाई। खाने पर ऐसे जुटे कि हटे ही नहीं। अधिक मात्रा खा जाने पर उल्टी हुई। कुल्ला किया और फिर खाने पर जुट गए। इस प्रकार वे सारे दिन कढ़ी खाने और उल्टी करने में लगे रहे। अंत में उन्होंने बची हुई कढ़ी को कुत्तों के आगे फेंक दिया।

इस अद्‌भुत प्रसंग का कारण उपस्थित लोगों ने पूछा तो उनने यही कहा कि बहुत दिन से मन कढ़ी के लिए मचल रहा था। उसे कितनी ही बार समझाया कि मेरी वात प्रकृति शारीरिक स्थिति में वह हानिकारक है और मानसिक स्थिति में इस प्रकार की लिप्सा अशोभनीय, पर यह ज्ञानचर्चा उसके गले उतरती ही न थी। जब भी

कढ़ी देखता, मचलने लगता। एकांत में भी उसी की इच्छा और कल्पना करता। समझाने-बुझाने के प्रयत्न सफल न हुए तो फिर यह निश्चय किया कि मन को वस्तुस्थिति समझ लेने और उसका अनुभव कर लेने का अवसर दिया जाए। आज मैंने वही किया। मनमर्जी जितनी कढ़ी खाने की ही छूट नहीं दी, वरन् इस बात के लिए विवश किया कि कढ़ी खाने की अति करे। उल्टी होने पर भी कढ़ी खाते रहने की प्रक्रिया इसीलिए अपनाई। शाम तक मन को कढ़ी से घोर अरुचि हो गई। उसे बार-बार कहा—अभी और खा, अभी और खा, जब उसने बिलकुल इन्कार कर दिया तो फिर बची-खुची कुत्ते को डाल दी। अब मन ने वस्तुस्थिति समझ ली, तृप्ति कर ली और घृणा की स्थिति तक कदम बढ़ा लिए। अब उसके ललचाने और मचलने का अवसर न आएगा।

जहाँ तक इंद्रिय संयम का प्रश्न है, वहाँ तक मन को थोड़ी छूट देकर रसानुभूति का अनुभव प्राप्त कर लेने देना चाहिए। अपने यहाँ गृहस्थ उपयोग के बाद शम, दम, तितीक्षा का विधान बताया गया है। युवावस्था में उपयोग का अवसर मिल जाता है और उस ओर का आकर्षण समाप्त हो जाता है। इसके बाद वानप्रस्थ और संन्यास में संयम साधना ठीक स्वाभाविक और बिना व्यवधान के चलने लगती है, किंतु यदि बिना उपयोग के बालकपन से ही इंद्रिय भोग का निषेध रहे तो मन की स्वाभाविक प्रकृति दूसरे को उस मार्ग पर चलते हुए देखकर तीव्र हो उठती हैं और संयम साधना के कभी भी भाव प्रवाह के दबाव से खंडित होने की आशंका बनी रहती है।

जहाँ इंद्रिय संयम का प्रश्न है, मन में उपयोग की हानियों को समझना चाहिए और ऐसे अवसरों से बचना चाहिए, जिनमें उस प्रकार के उभार उत्पन्न होते हों, पर कड़े प्रतिबंध नहीं लगाने

चाहिए। युवावस्था में तो विशेष रूप में ढील रखनी चाहिए और मर्यादित एवं वैध इंद्रिय तृप्ति पर कठोर प्रतिबंध नहीं लगाने चाहिए। न बहुत आकर्षण, न अति का निषेध, इस बीच की मनोभूमि में संयम साधना बहुत ही सरलता के साथ सधती चली जाती है।

निर्धारित लक्ष्य के महत्व और माहात्म्य पर पूरा चिंतन करना चाहिए। उसके मधुर कल्पना चित्र बनाने चाहिए और मार्ग पर चलते हुए लक्ष्य तक पहुँचने पर जो उपलब्धियाँ मिल सकती हैं, उनका लाभ कल्पना क्षेत्र में भली प्रकार जमाना चाहिए। सामान्य जीवनक्रम और उस असामान्य आदर्शवादी लक्ष्य की पूर्ति के परिणामों को अलग-अलग देखना, समझना और फिर उनकी तुलनात्मक समीक्षा करना, यह सिद्ध कर देता है कि नरपशु जैसे लोभ-मोह ग्रस्त जीवन और आदर्शवादी मार्ग पर चलने पर प्राप्त स्थिति में कितना अधिक अंतर है। ये कल्पना क्षेत्र जितने प्रखर होंगे, यह तुलनात्मक निष्कर्ष जितना प्रखर होगा, उतना ही महानता का लक्ष्य अपनाने की गरिमा स्पष्ट होती जाएगी।

तब मन पूरी संकल्प-शक्ति के साथ उस दिशा में लगेगा और इधर-उधर भागने बहकने के लिए रस्सी नहीं तुड़ाएगा। संकल्प की दृढ़ता विचार विश्लेषण और स्पष्ट समय से ही स्थिर रह सकती है और तभी उसे प्रचंड प्रतिक्रिया—उत्पादन में समर्थ शक्ति बनाया जा सकता है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा-३